वितस्ता के आँचल में
धम्म-प्रिय भँवर सिंह
सहवाल

"ठुक रही हैं कीलों-पर-कीलें,
पड रही हैं कुल्हाड़ियों पर कुल्हाड़ियाँ
रात - दिन
माँ के मस्तक पर
दरारें-ही-दरारें नजर आती हैं।"
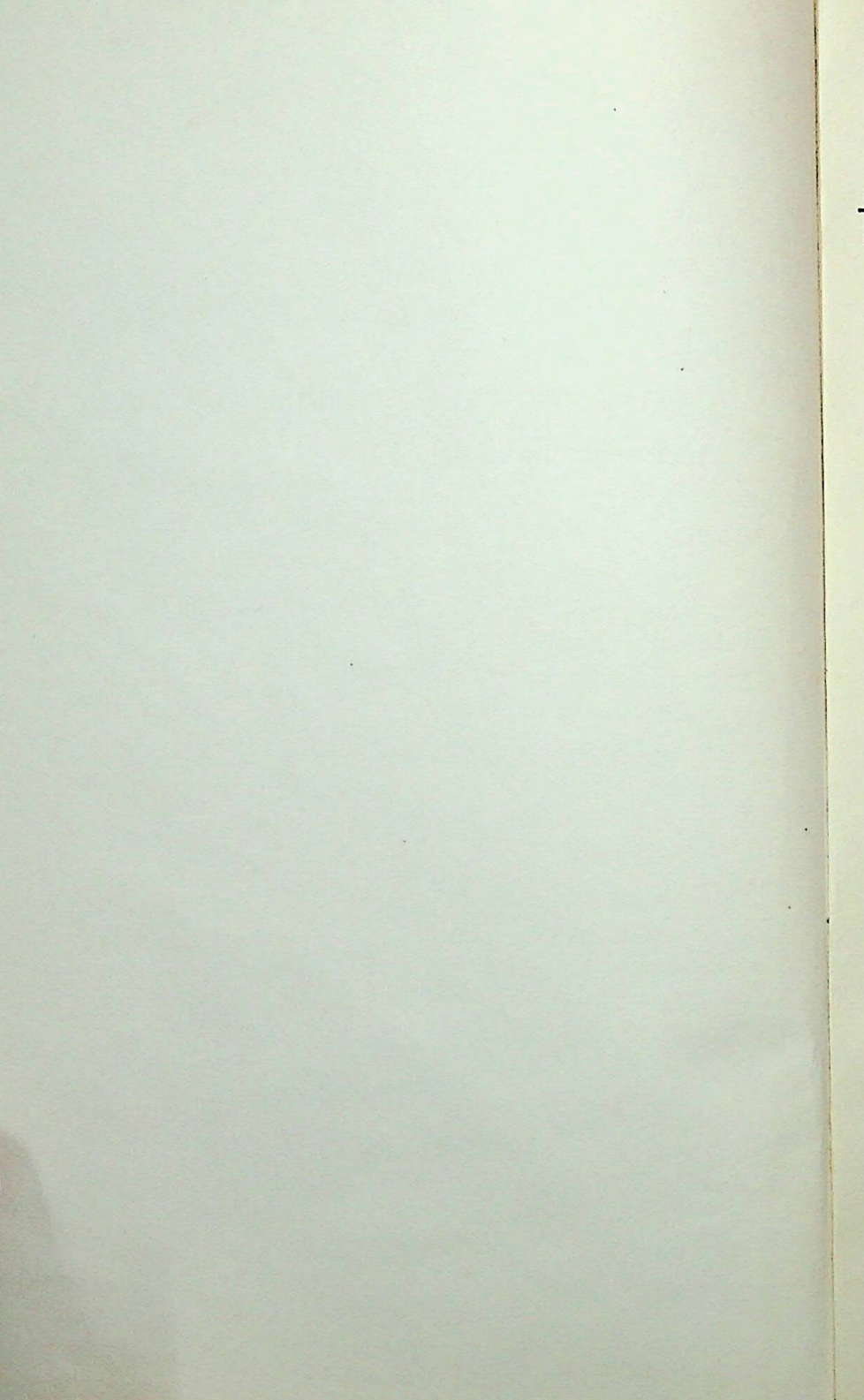
वितस्ता के आँचल में

धम्मप्रिय भँवर सिंह सहवाल

धम्मदीप प्रकाशन, अजमेर

वितस्ता के आँचल में

प्रथम संस्करण : 1999

प्रकाशक : उषा सहवाल, धम्मदीप प्रकाशन,अजमेर
(फाउण्डेशन ऑफ इन्डोलोजी एण्ड कल्चर, अजमेर के सौजन्य से)

मूल्य : रूपये 50/- मात्र

प्राप्ति स्थान : धम्मदीप प्रकाशन,
43/2117, 'सम्मादिट्ठि',
चाँद जी की डेयरी के पास,
धौला भाटा (निराला नगर) कॉलोनी,
अजमेर–305008.

दूरभाष : (0145) – 660739

आवरण–सज्जा : आकाश सूर्यवंशी

लेज़र टाईप सैटिंग : टेक्नोविजन एजुकेशन प्रा॰ लिमिटेड,
2–ख/16, शास्त्री नगर, अजमेर ।

मुद्रक : राहुल प्रिन्टर्स, अजमेर

'तुम स्वयं ही अपने स्वामी हो,
स्वयं ही अपनी गति;
अपनी अच्छी या बुरी हालत के लिए
तुम स्वयं ही जिम्मेदार हो
दूसरा कोई नहीं;
इसलिए अपने आप को संयमित करो, श्रेष्ठ बनाओ ।''

--- भगवान गौतम बुद्ध

पूर्वाकलन

पूर्वजों ने कहा है ....

कश्यप वैदिक कालीन ऋषि हैं । मान्यता है कि कश्यप कश्मीर भू–मण्डल के आदि पुरुष हैं । नीलमत पुराण में कश्यप ऋषि का वर्णन है । यही पुराण कश्मीर के जनमानस का आदिग्रन्थ भी है । इसी पुराण के अनुसार पार्वती ने वितस्ता नदी के रूप में कश्मीर की उर्वरा शक्ति को अधिक उपयोगी बना दिया । कश्मीर के कण–कण में व्याप्त जल के स्रोत साक्षी हैं कि हमारी सांस्कृतिक चेतना में जल का महत्त्व है । वितस्ता नदी कश्मीरी चेतना की प्रतीक है, स्पन्दन है । वितस्ता नदी के साथ हमारा संबंध भावात्मक हैं । यही कारण है कि हमारी आध्यात्मिक चेतना आज भी वितस्ता से जुड़ी हुई है ।

कवि का समर्पित भाव ....

कश्मीर तथा वितस्ता के प्रति धम्मप्रिय बी॰एस॰ सहवाल की समर्पित भावना है । "वितस्ता के आँचल में" – काव्य-पुस्तिका इसका प्रमाण है । इसीलिए तो कश्मीर तथा वहाँ के निवासियों की पीड़ा को वे इतनी समर्थ अभिव्यक्ति दे सके हैं । उन्होंने कश्मीरियों के विस्थापन अथवा पलायन की ज्वलंत समस्या को जिस मार्मिक ढंग से उभारा है वह उनकी प्रौढ़ लेखनी के अदम्य साहस का परिचायक है । लगता है हमारी ही तरह कश्मीर की घाटी के प्रति श्री सहवाल का लगाव पुरातन है –– सनातन है । इसीलिए तो "वितस्ता के आँचल में" का एक–एक शब्द हर विस्थापित कश्मीरी के हृदय को गहराइयों तक छूता है । हम इस काव्य-पुस्तिका का स्वागत करते हैं । हिन्दी जगत् को अभी बहुत कुछ देने की क्षमता है श्री सहवाल में ।

.... डॉ॰ चमन लाल रैणा

अपने ही आयने में –

कश्मीर निवासियों के पलायन की घटना ने हृदय को भीतरी तहों तक हिलाकर रख दिया । आद्रता से पथरीली धरती नम हो गयी और भावना के अंकुर फूट पड़े । बस उसी का परिणाम है यह "वितस्ता के आँचल में" । मैं इसे कवितात्मक व्यक्तव्य कहूँ या व्यक्तव्यात्मक कविता – समझ में नहीं आता । पर इन दोनों के बीच यह 'कुछ' है जो मन की बात को दो टूक शब्दों में अभिव्यक्त करती है, हृदय को छूती है, मस्तिष्क में एक प्रश्न उकेरती है तथा सोचने के लिए बाध्य करती है ।

'वितस्ता के आँचल में' एक लम्बी खुली कविता है । यह तीन खण्डों में विभक्त है — पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध और अन्ततः । पूर्वार्द्ध में प्रकृति, संस्कृति तथा दर्शन की पृष्ठभूमि में कश्मीर की भाव–दशा को दर्शाया गया है। अद्भुत रंग–रूप दिया है प्रकृति ने कश्मीर को — कश्मीर के लोगों को । इसलिए तो उसे धरती का स्वर्ग कहा गया है । और वही स्वर्ग छूट गया तो उसकी पीड़ा का क्या पार ? प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ कश्मीर का सांस्कृतिक वैभव भी समृद्ध है । अतः वहां के विभिन्न पर्वों–उत्सवों–त्यौहारों, प्रथाओं–परम्पराओं–परिपाटियों, देवी–देवताओं–मन्दिरों–धार्मिक-अनुष्ठानों–पूजा–प्रार्थनाओं, वस्त्राभूषणों, व्यंजनों, लोक–नृत्यों–धुनों–वाद्यों आदि के चित्र भावना की तूलिका से पौराणिक–आधुनिक रंगों में अंकित किये गये हैं । इनके बिना 'वितस्ता के आँचल में' की बात अधूरी रह जाती ।

प्राचीन बौद्ध तथा तज्जन्य वज्रयान एवं तंत्रयान की उर्वरा भूमि पर कश्मीरी शैव–शाक्त दर्शन की वल्लरियाँ फूटी हैं, लहराई हैं, जो कश्मीर के हिन्दू पंडितों के जीवन का अभिन्न अंग बन गई हैं । बौद्धों, सिद्धों, नाथों, शैवों, सूफ़ियों के चिन्तन ने एक विशेष गरिमा प्रदान की है कश्मीर की वसुन्धरा को – उसके आकाश को । इसमें वैदिक तत्त्वों का अनुगुंथन भी है । मातृ–शक्ति की विराट् परिकल्पना ने विश्व–पटल पर समग्र चेतना को रूपायित किया है ।

'श्रीचक्र' की भव्यता में सम्पूर्ण जगत् समा गया है । वस्तुतः यह जगत् आद्याशक्ति (कॉस्मिक इनर्जी) अथवा चैतन्य का ही विस्तार है– विस्फार है । यह ऊर्जा शक्ति ही पल–पल परिवर्तित विश्व में अपने सूक्ष्म–स्थूल, चेतन–अचेतन, व्यक्त–अव्यक्त रूप में अनेकधा परिव्याप्त है । कश्मीर की मूल धार्मिक मान्यताएँ, आचार–विचार, चिन्तन सब इसी से अनुप्राणित है । वहाँ के जन–जीवन में राजतरंगिणी और नीलमत पुराण तथा लल्लेश्वरी के दार्शनिक–आध्यात्मिक भाव–गीतों की छाप आज भी स्पष्ट दिखाई देती है । इस अप्रतिम अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर पर संकट के बादल घिरेंगे तो चिन्ता तो होगी ही । चिन्ता की इसी पीठिका के साथ समाप्त होता है 'वितस्ता के आँचल में' का पूर्वार्द्ध । लेकिन असली और मर्म की बात तो आगे है – उसके उत्तरार्द्ध में ।

वस्तुतः कश्मीर के शान्तिप्रिय निवासियों के धार्मिक दलन, उत्पीड़न एवं संहार की कहानी नई नहीं है । वह तो सन् 1389 ई॰ से प्रारम्भ होती है और सन् 1846 के पूर्व तक चलती है । हाँ, 1846 तथा उसके बाद 1947 तक शान्ति बहाल होती है । किन्तु सन् 1947 ई॰ में भारत के अंग्रेजों से स्वतंत्र होने के तथा कश्मीर के कानूनी रूप से भारत में विलय के साथ ही कबालियों ने कश्मीर के एक बड़े भू–भाग पर कब्जा कर लिया और तभी से कश्मीर के वातावरण में फिर बिगाड़ शुरु हो गया । पाकिस्तान ने योजनाबद्ध तरीके से कश्मीर के जलवायु में धीरे–धीरे साम्प्रदायिक विषाणु घोलने शुरू कर दिये । सीमाओं पर घुसपैंठ होती रही, विदेशी हथियार आते रहे, कश्मीर के सीधे–सादे युवकों को बन्दूक चलाने का बलात् प्रशिक्षण दिया जाता रहा । और भारत सरकार द्वारा जम्मू कश्मीर प्रदेश को संविधान के तहत विशेष दर्जा दिये जाने तथा विकास के हर सम्भव प्रावधान किये जाने के बावज़ूद भी यह सब चलता रहा । अन्त में सन् 1990 ई॰ तक माहौल पूरी तरह दूषित हो गया । जनवरी 1990 ई॰ को आतंक का सोया हुआ भूत फिर जागृत होकर ताण्डव नृत्य करने लगा ।

लेकिन तब की और थी, आज की बात और है। तब पराये विदेशी शासकों का एकतंत्र, निरंकुश, कट्टरवादी शासन था । आज तो समग्र देश

में, जिसका कश्मीर भी अभिन्न अंग है, एक ही प्रजातांत्रिक लोक–कल्याणकारी उदार शासन है । फिर भी सीधे–सादे, शान्तिप्रिय लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया और बचे हुए लोगों को आतंककारियों के उन्मादी विदेशी इरादों ने कश्मीर छोड़ने के लिए विवश कर दिया । पीछे सब कुछ तहस–नहस हो गया । घर भूतखाना हो गये । अब तो अपने ही घर में लौटने से भय खाता है मन ।

दिल्ली के विस्थापित कैम्पों की दशा और विस्थापितों की अकथनीय कष्ट–कठिनाइयों पर विचार करने की फ़ुर्सत किसे मिली ? सहानुभूति ज़ाहिर करना एक बात है, समानुभूति के तल से गुज़रना दूसरी बात है। वस्तुतः जिस पर गुजरती है, वही जानता है। इस बात को गली का सामान्य आदमी भी ठीक से समझता है कि कुछ बीमारियों को ढ़ील देने से वे समाप्त नहीं होती । प्रत्युत् समय पाकर और भी जटिल तथा प्राणलेवा बन जाती हैं। पर क्या अधिकृत हकीमों को इसकी चिन्ता है ? ऐसा ही कुछ मानवीय प्रश्न उभारा गया है "वितस्ता के आँचल में' के उत्तरार्द्ध में — इस विश्वास के साथ कि विस्थपित कश्मीरियों को न्याय मिल सकेगा, उनके उजड़े हुए घर फिर से बस सकेंगे और कश्मीर में वही शान्ति, वही सौहादर्य तथा समरसता पुनः लौट सकेगी ।

"वितस्ता कैं आँचल" में का तीसरा खण्ड 'अन्तंतः' है । इसके नाम से ही स्पष्ट है कि पलायन की घटना को लेकर मैंने अन्तिम रूप से अपनी बात छोटी–छोटी कविताओं के माध्यम से कहने की कोशिश की है । इस खण्ड में पाँच कविताएँ हैं जिनमें प्रथम कविता, कविता न होकर वितस्ता (जेहलम नदी) पर लिखा गया भावगीत है । मैं महसूस करता हूँ कि 'वितस्ता के आँचल में' की सारी बात कहने के बाद यदि स्वयं वितस्ता पर यह गीत न लिखा गया होता तो बहुत बड़ी कमी रह जाती । बाकी चार लघु खुली कविताएँ हैं । यद्यपि ये चारों कवताएँ मेरे स्वतंत्र विचारों की द्योतक हैं तथापि सन्दर्भ से एकदम कटी हुई नहीं हैं । मैं दर्शन तथा अनुभूत समस्या को लेकर कुछ कहना चाहता था, बस वही कह दिया ।

सबसे अन्त में पाठकों की सुविधा के लिए "परिशेष : एक" तथा "परिशेष : दो" दिये गये हैं । "परिशेष : एक" में कश्मीरी भाषा के शब्दों,

पदावलियों तथा वाक्यों के हिन्दी अर्थ एवं उन पर संक्षिप्त व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ दी गई हैं । 'परिशेष : दो' में संस्कृत के उन आचार्यों, साहित्यकारों तथा मनीषियों के विषय में किंचित् जानकारी दी गयी है जिनके नामों का उल्लेख इस काव्य पुस्तिका में आया है।

मैं श्रद्धेय पंडित निरंजन नाथ जी रैणा तथा उनके सुपुत्र डॉ॰ चमन लाल जी रैना के प्रति हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने बड़े स्नेह एवं आत्मीयता के साथ मुझे घण्टों अपने पास बैठाकर कश्मीर की प्रकृति, वनस्पति तथा संस्कृति की सिलसिलेवार जानकारी दी । डॉ॰ रैणा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व मुझे एक सरल, सौम्य, शान्त बौद्ध भिक्षु की प्रतिमूर्ति—सा नज़र आता है। श्रीमती जया सिब्बू ने कश्मीर के वस्त्राभूषणों, पर्वों तथा विभिन्न अवसरों पर किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों की सूची तैयार करने में सहयोग दिया है। और हाँ, अल्पना पंडित ने कश्मीर के लोक गीतों की चर्चा में भाग लेकर मेरा ध्यान 'छकरी' और 'वनवुन' की ओर आकर्षित किया है । वस्तुतः मैंने कश्मीर घाटी, विशेषतः श्रीनगर और उसके आस—पास का परिक्षेत्र श्री रैणा एवं उनके परिवार की आँखों से देखा है । अतः इस परिवार के प्रति मैं अपनी भाव—भीनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । मुझे डॉ॰ विमला मुंशी कृत पुस्तक "कश्मीर : इतिहास, संस्कृति तथा लोकगीत" पढ़ने का सौभाग्य मिला है । इस पुस्तक से मुझे कश्मीर के किंचित् इतिहास व संस्कृति को जानने का अवसर प्राप्त हुआ है । मैं कृतार्थ हुआ हूँ; अतः उनके प्रति कृतज्ञ हूँ । श्री एम॰ एल॰ पंडित जी तथा अन्य कश्मीरी मित्रों ने इस काव्य पुस्तिका को प्रकाशित करवाने में मुझे जो हौंसला दिया है , उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ । इस पुस्तिका की आकर्षक आवरण सज्जा के लिए श्री आकाश सूर्यवंशी धन्यवाद के प्रात्र हैं । मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती नारायणी देवी सहवाल को भी साधुवाद देता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक रचना में मुझे हर सम्भव सहयोग दिया ।

अन्त में यह कथन करना मैं अपना धर्म समझता हूँ कि मैंने विशुद्ध मानवीय धरातल पर "वितस्ता के आँचल में" की रचना की है । मेरे

अन्तःस्थल में किसी समुदाय–सम्प्रदाय विशेष के प्रति कोई दुर्भावना अथवा मैल नहीं है । फिर भी किसी की भावना तनिक–सी भी आहत हुई हो तो उसके लिए मैं हृदय से क्षमा प्राथी हूँ । इस छोटी सी काव्य-कथा का सम्यक् मूल्यांकन तो विज्ञ–मर्मज्ञ पाठक गण ही करेंगे । मैंने तो सिर्फ अपनी बात कही है ।

– – धम्मप्रिय बी॰ एस॰ सहवाल

अजमेर,

स्वतंत्रता दिवस, 1999

"आती थीं एक–एक कर ऋतुएँ
दे जाती थीं नयी–नयी भंगिमा
प्रकृति के पल–पल परिवर्तित रूप को ।
कामिनी, कविता, केसर, कस्तूरी और कमल –
बस इन्हीं के
समन्वित सम्मोहन का नाम था
कश्मीर;
धरती का स्वर्ग था ।"

समर्पण --

कश्मीर के उन सभी विस्थापितों को
जिन्होंने झेला है दंश
उन्मादी आतंक का,
और पिया है विष ;
जिनके कंठ की नीलिमा
उनके 'शिव' होने का प्रमाण है ।

—— धम्मप्रिय बी. एस. सहवाल

अनुक्रम

पूर्वार्द्ध

"केनवासी इन टुकड़ों पर
उभरी हुई
भाव की रेखाकृतियाँ
मिलेंगी ज़रूर,
तुम तसल्ली से कुछ देखना तो सही ।
तूलिका की व्यथा लेखना तो सही ।।"

– (पाँखुरी–पाँखुरी मन)

(1)

वितस्ता के तट पर

था हमारा घर –

नयी सड़क, हब्बा–कदल, श्री नगर, –

आज भी हमारे मन–मस्तिष्क में

रसा–बसा है ।

(2)

हम कैसे भूल जायें

उन दीर्घ घने पीपल सदृश्य चिनारों को

जिनकी जड़ें

हमारी आत्मा की गहराइयों में हैं,

जिनका एक–एक तन्तु

हमारे तन के स्नायुओं से बना है,

हमारे रक्त से सिंचा है,

हमारे विश्वास से पुष्ट हुआ है ।

सच, हमारे इरादों की हड्डियों में

खाद का पुंसत्व था,

सत्व था, ममत्व था,

बल था, संजीवनी शक्ति का ।

हमारी कश्मीरी भाषा के वे 'बूऽनि'

हमें देख कर झूम जाते थे,

गाते थे,

ललद्यद की आत्मिक–आध्यात्मिक प्रेमानुभूति के गीत

हवा में,

अपने–पराये की भावना से ऊपर उठ कर,

आन्तरिक लय में

समरस ।

उनकी छाया में हमें बहुत सुख मिलता था ।

(3)

और आकाश को छूते देवदारू

बुदलू और कायरू !

उनसे हम कैसे तोड़ लें अपना नाता ?

वे तो हमारे जीवन के अभिन्न अंग थे ।

हमारे सुख–दुःख के साथी,

इर्द–गिर्द पहाड़ियों पर सन्नद्ध प्रहरी ।

हम उनसे

और वे हमसे

अपने मन की बातें कहते थे ;

मिल कर सहते थे

सर्दी, गर्मी और बरसात ।

उनकी आँखों से छटकती थी

अनुपम–अनूठी छटा,

सावनी घटा

उनका माथा चूम लेती थी ।

हम उनकी श्वाँसों से लेते थे

अपनी श्वाँसों में उष्णता,

होता था जिससे हमारी धमनियों में

रक्त का संचार,

हृदय धड़कता था ;
एक सम्वेदनीय स्पन्दन
धरती का कण–कण महसूसता था ।

(4)
आस–पास, दूर–दूर
अनन्त-अक्षय वनराजि के बीच
हठीले गर्वीले
प्रणपाल वृक्ष
हमारे साध्य थे – आराध्य थे,
साक्षात्–साकार वन–देवता थे,
जिन्हें हम हृदय की सम्पूर्ण भावना से
पूजते थे;
कूजते थे
जिनकी टहनियों पर पक्षी भाँति–भाँति के,
कोटरों में
अधनिकली पाँखों की मासूम हसरतें
फड़फड़ाती थीं
उड़ने को
ऊँचे गगन के असीम
नीले विस्तार में ।

(5)
हाय ! पोशनूल !
बर्फ़ पिघलने पर दिखाई देते थे

घाटी में;
उन्हें शालिमार के बागों में
घूमने का बड़ा शौक था ।
उनकी मीठी आवाज़ में
ताज़गी थी ज़िन्दगी की,
प्रार्थना के साथ उनके संगीत के स्वर
एकाकार हो जाते थे
सुबह--सुबह ।
फ़सल पकती थी
दयदरी की कूक पर,
दर्दीली हूक पर
मन की बेवसी हहर जाती थी ।
बहुत भाती थीं कड़ियाँ
एकान्त में
सुदूर देश के एकाकी गीत की
कुकिल, पपीहा के स्वरों में
प्रीत की आकुलता थी ।
चऽर, हार फुदकती थीं
चहकती थीं हर कहीं ।
झील में करते थे क्रीड़ा
जल–विहग तरह–तरह के;
सच, काश्मीर पक्षियों का घर था ।

(6)

और हाँ, कुछ किलोमीटर दूर

वादियों में फैली वह पाम्पोर–वाली केसर !

हाय ! उसकी एक–एक पँखुड़ी में

मुग्धा–भाव था,

जो अपनी सम्पूर्ण शोड्षी भंगिमा के संग

उभर आता था

उसके रंग में,

रूप में;

शारदीय धूप में

धरती का लावण्य और भी निखर जाता था ।

उतर आता था स्वर्ग से

कार्त्तिक पूर्णिमा का कौमुदी महोत्सव

देता था हमें कुंकुमी निमन्त्रण,

खींच लेता था अपने मोहक इन्द्रजाल में

हमारे समग्र व्यक्तित्व को,

अस्तित्व को

अँकोर लेता था अपने अंक में ।

स्वर्णिम सौन्दर्य का स्रोत उसी से फूटता था ।

बिखर जाते थे सौरभ के कण

यत्र–तत्र, सर्वत्र;

मन्द–मन्द पवन के आन्दोलित स्पर्श में

होती थी पुलक;

एक अतीन्द्रीय ललक

तन में

मन में

भर जाती थी स्पृहणीय स्फुरण के साथ ।

'कोंग' की माया ही निराली थी ।

हम कैसे छूट पायेंगे उसके मोह–पाश से ?

(7)

बसन्त में

बरबस निकल आते थे पंख

कमसिन, कनोड़ी विरकिम को;

और नरगिस भर लाती थी चषक

मधु का,

सुम्बल मन–ही–मन मुस्कराती थी;

यौवन का मद छिपाये नहीं छिपता था,

वह तो और भी दिपता था

अंग में – प्रत्यंग में;

अज़ब शालीनता के संग

लजा ज़ाता था भद्र पंडितानी का मुख

टेकअ–बटनी में;

इरा अपनी वेष–भूषा में बहुत खूब फबती थी,

बहुत प्रिय लगती थी;

नागराज नील

उसकी पूजा से बहुत खुश था ।

(8)

धीर – गम्भीर

ब्यल, मादल और व्यनपोश

कश्मीर की पौराणिक धर्म–प्रवणता के

प्रतीक थे ।

सेब के बगीचों में झुरमुटों के झरोखे से

आँखें चुरा कर

झाँकने लगती थीं सेब–कलिकाएँ,

अपनी कच्ची उम्र में ही

आँकने लगती थीं अपना मोल,

निश्चित–निश्चिंत; चैत्र के महीने में ।

मौसम खुला–सा, दूध में धुला–सा

नज़र आता था हर ओर

वैसाखी कौसुम

ठसके से लगाता था ठहाके जंगल में रोज ही,

दुनिया की झंझटों से दूर, मस्त;

टूट कर ठाकुर जी के मन्दिर में पहुँच जाना

उसकी आदत थी ।

पूजा का पुष्प होना भी सौभाग्य की बात है ।

(9)

इतनी मुस्तैदी से खिलने का

एकाधिकार तो बस गुलाब का था;

अपनी मकरंदी मुस्कान

लुटा देता था वह शान से

युवतियों के स्वस्थ रक्तिम अधरों पर

कपोलों पर;

फूलों का राजा जो था,

जेठ पर उसका ही राज था एक छत्र ।

रूप में,

रस में, स्पर्श में,
गन्ध में,
उसका कोई सानी नहीं था;
उसके जैसा कोई मानी नहीं था ।
प्रकृति की इससे अधिक मनोरम
कलात्मक अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है ?

(10)
मृदुल मृणालिका के कन्धों पर
सिर उठाये पम्पोश
करते थे हँस कर अभिनन्दन प्रभात का;
उगते हुए सूरज की नवजात किरणें
किलोल करती थीं किसलय पर;
बिखर जाते थे ओस के बिन्दु
प्रत्येक दल पर;
डल झील में
चटुल लहरों की रेशमी सिलवटें
बनती–बिगड़ती थीं पल–पल,
नीलाभ नभ
अपनी प्रतिच्छाया निहारता था जल में;
तन–मन की ताज़गी का आषाढ़ी दौर
भोर की हर विधा में दर्शनीय था ।
कमल में लक्ष्मी का वास था,
मधु था, मद था, उल्लास था,
कवियों की कमनीय कल्पना का उत्स था;

कविता उसके चारों ओर मँडराती थी
भ्रमर–सी
गुनगुनाती थी ।
कामिनी का मुख, लोचन, कर्ण, कर और पद
कमल के भाव के बिना सभी अधूरे थे ।

(11)
सोम-लता की पत्तियों में
न जाने कहाँ से भर जाता था रस,
श्रावण में
न जाने कब डहडहा जाता था धतूरा,
हमें पता ही नहीं चलता था
और उधर वह कपास के फूलों की गहमह
खेतों में
बाँध लेती थी मन, मन की डोरी से
पास से गुज़रते हर राही का
भादों में;
यादों में
आज भी वह ज़िन्दा है ।
सच, बीते हुए पल कभी मरते नहीं हैं ।

(12)
सुन्दरियों का सौन्दर्य
और भी खिल उठता था आश्विन में
ज़ाफुर के खिलने से;

मदान्ध गन्ध से माटी महक जाती थी,
भावनाओं में आ जाता था ज्वार,
प्यार का असर
हर ओर नज़र आता था;
कंचुकी में यौवन का उभार
सम्भाले नहीं सम्भलता था ।

(13)
फलों से लदे–पदे शिकारा
टटोलते थे
दूर–दूर से आये पर्यटकों का मन;
हाउस–बोटों में
बढ़ जाती थीं चहल–पहल सीजन की;
हांजियों की दिन–चर्या
रोज़ी–रोटी से शुरू होती थी ।

(14)
उगता था और डूब जाता था सूरज
कवि–दार्शनिक के – से अंदाज में
दे जाता था सन्देश ज़िन्दगी का,
जिसे हम उतार लेते थे
अपने मन की पुस्तिका में
कल्पना की मोरपंखी लेखनी से;
अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, बिल्हण, कल्हण, बाण,
कालिदास और आनन्द–वर्द्धन का अभ्युदय ऐसे ही हुआ था ।

बौद्धों की अभिधा,

शैवों की लक्षणा,

शाक्तों की व्यंजना

ऐसे ही जन्मी थी सदियों पूर्व;

सिद्धों ने—नाथों ने

दी थी हमें अमूल्य धरोहर

शब्दों की,

अर्थों की,

चिन्तन की, साहित्य की ।

इस चिरन्तन सम्पत्ति को

हम कैसे डुबों दें गहरे पानी में ?

(15)

आलूबुखारा, त्रैल, अंगूर, बबगोशा, चेऽरि

और सेब की डालियाँ

झुक जाती थीं फलों से,

लचक जाती थीं कुमारिकाओं की सिंह – जैसी

कटिका

भरी हुई टोकरियों के भार से ।

हवा के झौंकों से टूट—टूट कर

हरी घास पर

गिर जाते थे कितने ही फल स्वतः ही

अपनी चिरपरिचित पकी हुई गन्ध के साथ ।

हाथ में हाथ

कितना अच्छा लगता था

युवा प्रेमी–युगल का,
जो अपने भावी जीवन के सुनहले सपने सँजोए
बैठा रहता था एकान्त में
देर तक
हीमाल–नागराय की लोक–गाथात्मक मुद्रा में ।
अखरोठों से हमारे घर भर जाते थे ।

(16)
निशात, शालिमार और चश्मेशाही
नन्दन–वन के भू–संस्करण थे;
शचि अपने हाथों से रोपती थी पौधे,
अमृत से सींचती थी पत्ता–पत्ता;
छिड़कती थी चाँदनी का
चम्पई पीयूष
चन्द्रमा के घट से
पूर्णिमा की रात को ;
और इन्द्र–देव
अंगूरी खुमार ज़र्रे–ज़र्रे में उँडेल देता था,
शिल्पा देता था
एक रोमांटिक सूफ़ीयाना मनोभाव
अश्वघोषीय काव्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ
पत्थर–पत्थर पर
अमर ।
साँझ देती थी सन्तूरी आवाज़
अँगड़ीली सुबह को,

सुबह देती थी तुम्बकनारीय अंदाज़
रंगीली साँझ को ।
छकरी और वनवुन की धुन
झरनों की 'झर–झर' से मिलकर
पैदा करती थी वातावरण में एक भीनी–सी रिदम,
एक मादक–सी थिरकन ।
'वाह–वाह निशात सोन' के लोकगीतीय संगीत की
छाप
चप्पे–चप्पे पर अँक जाती थी;
दिशाओं में
एक मिथकीय तन्द्रा–सी उभर आती थी ।

(17)
रोफ़ में नाच उठते थे पाँव
एक साथ वृत्ताकार,
रबाबों के तार रमक उठते थे ।
गा उठती थी दर्द–भरे स्वरों में
गुर्जर–वनिताएँ —
'आओ, अब तो आ जाओ, ओ ! मेरे चरवाहे !
मेरी वितस्ता में पानी पिलाओ
अपनी भेड़ों को;
मैं शिकारा में दीपक जलाऊँगी,
उतारूँगी तुम्हारी आरती,
फूलों से सजाऊँगी सेज,
अपनी बाहों को तकिया बनाऊँगी,

गाऊँगी गीत तुम्हारी पर्वतीय चर्या के,
हरूँगी थकान,
तुम्हें अपने मन की बातें बताऊँगी ।
आओ, अब तो आ जाओ, ओ ! मेरे चरवाहे ।'
– आह ! प्रणयाविल वियोग कितना दुःखदायी होता है !

(18)
पछिन, नीलुज, अंजु
और 'ताऽव–गाड–लवास' के स्नेहिल उपहार
पीहर से पाकर
खिल उठती थीं विवाहिताएँ
पूर्ण चन्द्र की चाँदनी की तरह;
नून, चोच, अतगत की परिपाटी
कौन समझेगा यहाँ दूर देश में ?
बेटियाँ कलेजे का कौर होती हैं ।
विवाह के बाद
प्रथम शिशिर ऋतु में
होता था 'शिशुर–लागुन'
ज़रबाफ़ जड़ दिया जाता था सिर अथवा कन्धों पर
ताकि नवोढ़ा दुल्हिन को नज़र न लग सके
दुनिया की; –
यह हमारे भोले विश्वास का चिह्न था ।

(19)
हुर्य – आऽठम को हारी पर्वत पर

शारिका के मन्दिर में भजन–कीर्तन
चलता था रात–भर,
'श्री–चक्र' की पूजा होती थी
परा–शक्ति त्रिपुर–सुन्दरी चक्रेश्वरी के रूप में ।
त्रिकोण के मध्य
परम शिव का वास था,
जो करता था विस्फार विश्व-का
इच्छा–ज्ञान–क्रिया की विमर्श–शक्ति से ।
तेजोन्मय स्वरूप से निकलती थीं अनन्त किरणें
सूर्य की,
चन्द्र की,
अग्नि की,
सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करती थी;
अन्धकार हरती थीं ।
उत्पत्ति–स्थिति–संहार का क्रम
उसी से संचालित होता था;
काल–चक्र चलता था उसी से अनवरत
टिक जाती थीं दृष्टियाँ अनेकों
एक साथ
श्याम–सुन्दरी की नीलमणी नीलाभ छवि पर
भावाभिभूत;
दैवीय दिव्यता देती थी हमें
अपूर्व शान्ति,
दुनियादारी की दुविधाओं से
मुक्ति मिल जाती थी क्षण–भर ।

अन्तर्मुखी-से हम
भूल जाते थे सारे दु:ख–दर्द ।

(20)
हार–नवम को खेलती थी 'हारिन–गिन्दुन'
नव वधुएँ;
'द्यार–दहम' को होता था हिसाब–किताब
धन का;
कुम्भकार के हाथों से निर्मित
वटुक, रामगोड़, रिशि–डूलिज, सनि–वारी,
और माली के हाथों से बनी
वुसुर
उस दिन खूब बिकती थीं बाज़ार में ।
गाडकाह पर बनती थी मछली
और उसके बाद
'वार्गुर्य–बाह, हैरच़–त्रुवाह और डून्य्–मावस' के आयोजनों की
धूम मच जाती थी
जन–जीवन में;
अखरोट–पूजन की परम्परा
देखी है तुमने और कहीं ?
'सलाम' के दिन
मुस्लिम कर्मकार आते थे हमारे घरों पर
एक आत्मीय अभिवादन दे जाते थे
ले जाते थे बदले में

स्नेह–मिश्रित नेग स्वरूप भेंट ।
आती थीं मुस्लिम–महिलाएँ
हर तीज–त्यौहार पर
गीत गाती थीं बड़े उत्साह से;
और हमारी स्त्रियाँ करती थीं शकुन
उनके हर उत्सव पर ।
भावनाओं का ऐसा उदार विनिमय
और कहीं मिलेगा तुम्हें ?
सौहार्द्य हमारी संस्कृति की पहली पहचान थी ।

(21)
इस तरह कई दिनों तक चलता था
शिवरात्रि का पावन पर्व
और फिर 'तील–अठम' को हो जाता था
उसका समापन ।
नदी में प्रवाहित कर दिये जाते थे दीप
साँझ को,
जिन्हें देखने के लिए निकल आते थे तारे आकाश में
असंख्य,
रात होने पर ।

(22)
लेकिन 'पनद्यून' का मज़ा ही कुछ और था
कितना स्वादिष्ट रोठ बनता था उस दिन !
और वह कुबेर वाली 'खिची–मावस'

वह तो आज भी खिंची है हमारे मस्तिष्क की पाटी पर
सम्पत्ति–अर्जन की पौराणिक परम्परा का
वह दिन कितना शुभ था !
'गाडवत' हमारे वास्तु–कला के देवता को
नमन था ।

(23)
बहुत खुशनुमा होता था चैत्र माह में मौसम;
वन–गोष्ठी के रंग में
सब रंग जाते थे,
आऽलिचि फूट पड़ता था बगीचों में
हल्की गुलाबी छाया से संवलित बादाम के श्वेत पुष्प
आमंत्रित करते थे रमणियों को
शीर और मुग़ल–चाय की चुश्कियों में
डूब जाने के लिए —
सिंघाड़ों की मरमरी मिठास में
घुल जाने के लिए ।
वस्तुतः 'जंगत्रय'
नारी के जीवन्त उत्साह,
प्रेम और समर्पण का पर्व था ।

(24)
हाय ! नारियाँ सुगंधित सौन्दर्य की
संगमरमरी प्रतिमाएँ थी; – अप्रतिम;
सुकुमारता उनके तन में ही नहीं,

मन में भी थी ।

निसर्ग ने स्वयं अपने हाथों से बनाया था उन्हें

तसल्ली से ।

सच, पौराणिक पद्मिनियों का गर्व चूर्ण हो जाता था;

रति पानी भरती थी उनके आगे ।

फ़िरन, नरवारि, लूँगि, कल्पुश, तरंग जूज़ पूच में

और भी निखर जाता था उनक़ा रंग,

डेजिहोर, अटहोर, तालरज, रोंग, पनदाव में

और भी दमक उठते थे उनके अंग ;

लज़ा ज़ाती थी चाँदनी,

चाँद छिप जाता था बादलों की ओट में ।

और पुरुष फबते थे

सौम्यता, शालीनता, शिष्टता से

पोछ, फिरन, दस्तार, ट्थोक में ।

बस इन्हीं वस्त्राभूषणों से होती थी रेखांकित

हमारी कश्मीरी पहचान ।

(25)

विवाहोत्सव पर होती थी तैयारी

दिवगोन की,

वर सजता था – धजता था

वधू स्नान करती थी अभिमंत्रित जल से;

बनी–ठनी स्त्रियों के मधुर कण्ठों से

फूट पड़ते थे मांगलिक बोल :–

–"दार पूज़ करअथ मालि दारे त हंगस,

अंलित रोंगस गव वोन्य मिलचार ।" –

अर्थात् 'हे प्रिये ! तुमने द्वार तथा ड्योढी की पूजा की;

हो गया इलायची और लवंग का योग ।'

आहा ! जिसके गर्भ में

सुगन्धित बीज होता है – वह इलायची

वधू का,

और तीखेपन से युक्त लम्बे आकार वाली लवंग

वर का प्रतीक थी ;

अन्योक्ति का ऐसा उदाहरण

मिलेगा तुम्हें किसी काव्य–शास्त्रीय ग्रन्थ में ?

अथवास आत्मिक बन्धन की पावन प्रथा थी ।

छैला मिजाज़ लोग –

'कोंगस मज़ रोंग फोल' का खिताब पाते थे

विनोदिता स्त्रियों से ।

रोगन जोश, कलिया, चोक–चर्वन,

और न जाने क्या–क्या बनते थे व्यंजन सामिष

'सतरात' पर

प्यार से परोसे जाते थे ।

(26)

तुम क्या जानो नवरेह क्या होता है ?

नव वर्ष की पूर्व रात्रि को ही

एक बड़ी परात में भर दिये जाते थे चावल;

रख दिया जाता था उस पर

नेछु–पत्र, क़लम–दवात, कुलचिवोर,

चाँदी का सिक्का, दही, भात,

पुष्प, नमक; अखरोट, वय और भगवती का चित्र ।
ये सब चीजें
हमारे नव वर्ष की समृद्धि, सम्पन्नता तथा क्षेम की
प्रतीक़ थीं ।
पुरानी लीक थी –
करती थी दर्शन इन सब का सर्वप्रथम
कुमारिका कन्या
प्रातः उठ कर,
फिर कराती थी परिवार के अन्य सदस्यों को
उठते–उठते ।
नये वर्ष की मंगल–विधायी कामना की
ऐसी सुकुमार परिपाटी
और कहीं नहीं मिलती ।

(27)
श्रीनगर से लगभग तीस किलोमीटर दूर
तुलमुल के पास
मंदिर था क्षीर–भवानी का
ओत–प्रोत वैष्णवी आभा से ।
ज्येष्ठ अष्ठमी को ही नहीं,
हर जून पछ आऽठम को
लोग आते थे
दुग्ध–शर्करा चढ़ाते थे
मनाते थे शकुन भविष्य का ।
श्रावण–पूनम, जनम सतम, दीवाली, दशहरा –

और क्या—क्या गिनायें ?
हमारे जीवन ही पर्वमय था ।

(28)
भद्रकाली, ज्वालां, ज्येष्ठा के रमणीय अंचलों में
रमण करती थी हमारी आत्मा;
मठ, मन्दिर, तीर्थ
साधना के – आराधना के पवित्रतम स्थल थे,
जिनमें निवास करती थी
युग—युग से पुंजीभूत हमारी आस्था;
बजा करती थी घंटियाँ—झाँझर एक साथ
प्रार्थनाओं की भीड़ लग जाती थी ।
धीर—गम्भीर समवेत् स्वरों में
गूँजते थे मन्त्राचार;
तन्त्राचार की गुत्थियों में सुलझते थे प्रश्न
ज़िन्दगी के;
धूनियों में तप कर
कंचन्न बनती थी मनोकाया;
अलख जगता था,
हो जाता था सारा माहौल
वशीकृत—सा;
सिद्धियाँ अपनी चरम अवस्था को प्राप्त होती थीं ।
लेकिन गया – सब कुछ गया;
तंत्र टूट गये,
मंत्र रूठ गये,

षड्यन्त्र ने बाज़ी मार ली;
योगियों की गैरिक झोलियों में
अब कुछ भी नहीं है ।

(29)

आती थीं एक–एक कर ऋतुएँ
दे जाती थी नयी–नयी भंगिमा
प्रकृति के पल–पल परिवर्तित रूप को ।
कामिनी, कविता, केसर, कस्तूरी और कमल –
बस इन्हीं के
समन्वित सम्मोहन का नाम था
कश्मीर;
धरती का स्वर्ग था ।
करते थे रमण देवता,
नारियों की पूजा होती थी;
निहारते थे जिसको आकाश से
सूरज, चाँद, तारे,
निहारते ही रह जाते थे –
निश्चल, निश्छल, आश्चर्य–चकित ।
हाय ! वही छूट गया ।
हम कंगाल हो गये सर्वथा !

(30)

'राजतरंगिणी' और 'नीलमत' के पन्नों को
तनिक पलट कर तो देखो,
मिल जायेगा तुम्हें अक्षर–अक्षर में

हरहराता

हमारा प्राचीन इतिहास

पुरातन सभ्यता की – संस्कृति की

कहानी हर सफ़ा कहेगा ।

'क', 'अश्म' और 'ईर' के संयोग से

निष्पन्न हुआ था 'कश्मीर' ।

कश्यप ने निभाई थी भूमिका

इसके निर्माण की

प्रागैतिहासिक काल में ।

पर्वतों से घिरी इस घाटी में

प्रारम्भ में जल–ही–जल था ।

मनु की नौका टकराई थी मत्स्य की पीठ से

जल–प्लावन में,

यहीं–कहीं टिकी थी ।

हिमालय के गर्भ में

मानव का उद्‌गम यहीं–कहीं हुआ था ।

यहीं–कहीं था नागों का मूल,

इसी माटी में रमा था

आर्यों का मन

सर्वप्रथम वैदिक ऋचाओं की रचना

यहीं–कहीं हुई थी — 'कौशुर' में ।

(31)

हाय ! श्रीनगर, बसाया था

सम्राट् अशोक ने

सदियों पूर्व;
इन्हीं पर्वत–शिलाखण्डों से निर्मित
भव्य च्वत्रिकाओं पर;
हुआ था
बौद्ध–संगीति का विराट् आयोजन
सम्राट् कनिष्क के हाथों,
जिसकी धार्मिक उदात्तता का परिचय
देती हैं आज भी
शान्त, शुभ्र, हिमाच्छादित चोटियाँ हिमाद्रि की ।

(32)
आज भी बोलते हैं पत्थर
वितस्ता के तट पर –
'यारबल' का 'यार' 'विहार' का अपभ्रंश है;
इन्हीं विहारों की पुरातत्त्वी कीमिया से
बहती थी ऊर्जा,
चेतना की धारा मानस को आप्लावित करती थी;
हरती थी क्लेश,
कल्मष विश्व का ।
धम्म – वाणी के सूक्ष्म अणु–परमाणु
आज भी तैरते हैं हवा में ।
आगे बढ़ा था यहीं से
धर्म की गंगा का, शील–समाधि–प्रज्ञा का
ऊर्ध्वगामी प्रवाह;
लद्दाख, तिब्बत, चीन, रूस, मंगोलिया,

जापान की धरा सिंचित हुई थी
उत्तरोत्तर
पवित्र जल से;
उगी थी फ़सल
अनन्त करुणा की,
अनन्त मैत्री की,
अनन्त मुदिता की,
अनन्त उपेक्षा की,
अहिंसा की तलवार में –
प्यार में
कितनी मारक शक्ति होती है,
जो धराशायी कर देती है
हिंसा को – घृणा को ;
सबको अपना बना लेती है,
गले से लगा लेती है !
सद्धर्म के सूत्र में बँध गया था विश्व,
'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा
चरितार्थ हुई थी सम्यक् स्वरूप में ।
उस समय एक ही भाषा थी;
एक ही भाव था
सबके कल्याण का,
मंगल का,
हित का,
स्वस्ति का,
सहिष्णुता जीवन का मूल मंत्र था ।

सिद्धान्त से पुष्ट होता था व्यवहार;
व्यवहार सिद्धान्त की व्याख्या करता था ।
सच, समन्वय के सोच का –
वैज्ञानिक बीज
भावना के धरातल पर अंकुरित होता है ।

(33)
महादेव–पर्वत की शिला पर
उत्कीर्ण
अदृश्य
शिव–सूत्रों का विश्लेषण होता था
वसुगुप्तीय सपनों के विस्तृत सन्दर्भ में
विचारों के गर्भ में
त्रिक–दर्शन की महान् परिकल्पना
पनपती थी,
स्थित–प्रज्ञता
अनुभूति पर उतार देती थी प्रत्यभिज्ञा के मर्म को ।
हाय ! चश्मे–साहिबी में रूप भवानी की तप–कथा
आज भी टँगी है सचित्र
हमारी स्मृति की खूँटी पर;
हम उसे कैसे उखाड़ कर फैंक दें ?

(34)
'नवशीन मुबारक' के शब्द
आज भी गूँजते हैं हमारे कानों में

कितना सुहावना–लुभावना होता था
वर्ष का प्रथम हिमपात !
दृष्टि उजला जाती थी,
दूधिया फूल बरसाती थी
स्वर्ग की अप्सराएँ हँस–हँस कर
धरती पर
हर्ष की लहर दौड़ जाती थी ।
जिस तरह मनाते हो तुम
तपती गर्मी के बाद
सौंधी गन्ध से भरा आषाढ़ी बरसात का
प्रथम दिन
आद्रा नक्षत्र में
उसी तरह उस दिन मनाते थे हम
हिमपातोत्सव
गाते थे – नाचते थे
पाँवों में पुलहोर बहुत सुन्दर लगते थे ।
उतर आते थे कागा
उस विस्तृत हिम–पटल पर
झुण्ड–के–झुण्ड,
श्वेत–श्याम रंगों का कुदरती कन्ट्रास्ट
मन मोह लेता था ।
'काव–पुनिम' पर
'काव यिन्य बोल मरा द्योन मोल' –. वाले बोल
कण्ठ में उतर आते थे ।
रूई के फ़ोहों की तरह

गिरते हुए बर्फ़ के महीन रेशों को
देखा है तुमने कभी
घरों की छतों पर,
वृक्षों पर,
पहाड़ियों पर चुप–चुप;
मोटी–मोटी चट्टानें जम जाती थीं
सब जगह
बनाते थे जिनमें शिव की,
देवी की, देवता की,
तरह–तरह की आकृतियाँ खरोंच कर ।
हृदंय की धड़कनें
पश्मीनी–रफाली दुशालों में लिपट जाती थी;
काँगड़ी में धधकते हुए अंगारे
हमारी छाती से चिपट जाते थे
दूध पीते अबोध शिशु – से;
बड़ा चैन मिलता था मन को ।

(35)

ऐला–पत्थर, खिलनमर्ग और पहलगाम के
हिम–तलों पर
स्केटिंग करते थे युवक–युवतियाँ सानन्द
अपने मनसूबों की ऊँचाइयों तक
पहुँच जाते थे ।
– और इस तरह
ठिठुरती ठण्ड का मौसम गुज़र जाता था ।

दूर पहाड़ी ढ़लानों पर
सिर्फ़ जमी रह जाती थी बर्फ़
शैलानियों को लुभाने के लिये
शान्त–प्रशान्त ।

–'–'–'–''–'–'–'

उत्तरार्द्ध

"उड़ते रहे पन्ने केलैण्डर के
टँगी दीवार पर,
उखड़ी साँस–सी चलती रही
ठण्डी हवा;
सुनाई पड़ रहा कुछ भी नहीं
सुनसान में
भीतरी तूफ़ान के रव के सिवा ।

— (घूमती पगडंडियाँ)

(1)

कुछ भी नहीं था
विषमता के नाम पर
हिमालय की पहाड़ियों से घिरी
उस नयनाभिराम घाटी में;
सब–कुछ सामान्य था,
अमन था – चैन था,
न ऊँच–नीच की भावना,
न वर्ण,
न जाति,
न भेद,
बस एक ही ज़िन्दगी सीधी–सादी,
एक ही सुख,
एक ही दुःख,
एक ही कर्म,
एक ही धर्म था हमारा–हम सबका ।

(2)

लेकिन एक दिन
लग गयी हमारे स्वर्ग को
न जाने किसकी नज़र !
साम्प्रदायिक आग की लपटों में

झुलस गये देवदारू, कायरू, बुदलू और चिनार
मुरझा गया कोंग का कुंकुमी चेहरा;
उठ गया धुवां चारों ओर
बारूद़ का,
घुट गया द़म रेशमी मौसम का,
आकाश की नीलिमा धुँधला गयी,
गँदला गया वितस्ता का स्फटिक जल,
उतर गया घाटी में
मौत का काला साया ।
शान्ति भंग हो गयी
बर्फ़ से ढँकी समुज्जवला पहाड़ियों की ।
चिड़ियों का चहकना बन्द हो गया
फूलों का महकना बन्द हो गया
बागों में ।
खूनी इरादों का कुचक्री पहिया
घूम गया हमारे सीने पर बेद़र्दी से;
हमारे सपने चूर–चूर हो गये ।

(3)

उन्नीस व बीस जनवरी सन् उन्नीस सौ नब्बे की
मध्य रात्रि;
सड़कों पर उन्मादी हौंसलों का
बेकाबू हुज़ूम,
बेहिसाब शोर
चारों ओर,

धर्मान्ध राष्ट्र–विरोधी नारे,
खौफ़नाक़ घुड़दौड़ी माहौल ।
हम धड़धड़ा कर उठ बैठे थे अपने बिस्तरों में
नींद से;
वे करते रहे वीभत्स, घृणास्पद, नंगा नृत्य
खुल कर आम चौराहों पर
हेलोजनी रोशनी में,
हमारे घरों के सामने;
हम देखते रहे अपने खिड़की–दरवाजों की
सन्धों से–दरारों से
श्वास रोके–सन्न, अचल;
न उन्हें किसी ने रोका,
न टोका ।
और फिर उस रात्रि से ही
चलने लगीं घुसपैठी विदेशी हवाएँ;
छलने लगीं हमारे सीने
सीमा–पार से आयीं स्वचालित बन्दुकें
अन्धाधुन्ध बेधड़क ।
हमारे मनसूबे चिंथड़े–चिंथड़े हो गये,
बहने लगा रक्त
चट्टानों पर जमने लगे थक्कों–पर–थक्के ।
यहाँ–वहाँ, आस–पास
गाँवों में, कस्बों में
शुरू हो गया
आतंकी सामूहिक हत्याओं का दौर

निमर्म ।

हमारा मान, सम्मान,

अस्मिता, प्राण,

सभी–कुछ ख़तरे में पड़ गया;

होने लगे षड्यंत्री प्रहार

एक–के–बाद–एक निरन्तर

और हम उफ़ भी न कर सके ।

(4)

परिवार–के–परिवार भून दिये गये

दिन के भरे उजाले में

निहत्थे

घरों से बाहर निकाल कर

पंक्ति–बद्ध, गोलियों से ।

बच्चों, वृद्धों, स्त्रियों के छटपटाते रहे शरीर

जमीन पर

और फिर शान्त हो गये

हमेशा–हमेशा के लिए ।

आसमान देखता रह गया

फटी–फटी आँखों से ।

कोई बोला तक नहीं,

किसी ने मुँह खोला तक नहीं ।

(5)

और उधर —

ढ़ोल पिटते रहे क़ानून–व्यवस्था के
हमदर्दियों की होती रही
ख़ानापूर्ति,
सरकारी काग़जों में
हत्याओं के आँकड़े घटते–बढ़ते रहे ।
और हम लेते रहे साँस
दबी–सी
घुटी–सी
कटने लगा एक–एक दिन
तनावों में
एक–एक पल भारी हो गया
दबावों में
तरह–तरह की आशंकाओं से फटने लगा
सिर ।
असहाय–निरुपाय
हम कर भी क्या सकते थे !
कोई भी नहीं आया मदद को
किसी ने भी ढाँढस नहीं बँधाया
हमारे घर जल रहे थे, हम जल रहे थे,
और अधिकृत घोषणाओं में
सामान्य स्थिति थी – एकदम;
जैसे कोई घटना घटी ही न हो,
लाशों से धरती पटी ही न हो ।
एक अन्धी, बधिर, अकर्मण्य व्यवस्था से

उपेक्षा के सिवा
और अपेक्षा की भी क्या जा सकती थी !

(6)
उन्हें तो चिन्ता थी
सिर्फ़ अपनी कुर्शी की;
भारी सुरक्षा के घेरों में आवृत्त
वे फ़कत रस्म अदा करते थे
मातम–पुर्सी की ।
कोई भी सार्थक निर्णय लेने से
कतराते थे
उनके हाथ–पाँव फूल जाते थे;
तर–ब–तर हो जाते थे वे पसीने से
वातानुकूलित चैम्बर में,
अन्दर–ही–अन्दर बैठे–बैठे
जारी करवा देते थे
सम्वेदना–सन्देश
अफ़सोस–भरे व्यक्तव्य
अख़बारों में, — टेलीविज़नों पर ।
और फिर इतिश्री ।

(7)
सात मार्च सन् उन्नीस सौ नब्बे का दिन;
सूर्योदय के पूर्व-का समय
मज़बूरियों के मध्य

अन्ततः छोड़ ही दिया हमने श्रीनगर —
अपना घर ।
अपनी जन्म–भूमि को
अपनी मातृ–भूमि को
अपनी पितृ–भूमि को
ठीक से नमस्कार भी नहीं कर पाये;
'अलविदा' भी नहीं बोल पाये
बिछुड़ते समय
हमेशा के लिए
या फिर कौन जाने कब तक के लिए !
देखते ही रह गये पम्पोश
उदास मन से टुकुर–टुकुर
उस दिन वे पूरी तरह से खिल नहीं पाये थे ।
यह हमारा विस्थापन था
किंवा फ्लायन
अथवा बलात् निष्क्रमण
या फिर नियति – कौन बताये ?

(8)

बस लाये हैं हम बचाकर अपने साथ
अपने विश्वास,
अपनी आस्थाएँ,
परम्पराएँ,
यादें
और कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

धर्म की

दर्शन की

कश्मीरी साहित्य की

अपने सीने से लगा कर; .

बाकी सब-कुछ छूट गया पहाड़ियों के पीछे

जलती हुई घाटी में ।

हम घर से बेघर हो गये;

आ पड़े दिल्ली के विस्थापित कैम्पों में

उखड़े–से

टूटे–से

पतझड़ के सूखे पत्तों–से

संतप्त

फिरते रहे सड़कों पर

मारे–मारे इधर–उधर

खाते रहे ठोकरें

सम्यक् आजीविका की तलाश में;

बाजार में

हमारी रही–सही जेबें भी कट गयीं ।

चोरी हो गये हमारे जूते

मन्दिर में ।

हा ! दुर्दैव ! पच्चीस पैसे का एक–एक सिक्का भी

लगा कर रखते थे हम

सीने से,

दुर्दिन में मात्र वही एक सहारा था हमारा

भरोसा था, मित्र था ।

(9)

हमारी पूजा में कहाँ कमी रह गयी
ओ, माँ शारिके !
कुछ भी समझ में नहीं आता;
हमें कोई भी तो नहीं बताता,
कहाँ चूक गये हम अपनी अभ्यर्थना में,
प्रार्थना के बोल कहाँ गड़बड़ा गये;
कहाँ सूख गये भावना के उमगते स्रोत !
वितस्ता में अब उतना पानी नहीं है ।

(10)

जाने छूता है कि नहीं पवन
गौरियों का पल्लू
बसन्त में हौले से,
जाने खिलता है कि नहीं गुलाब़
बेफ़िक्री से टहनियों पर,
पोशनूल बोलता हैं कि नहीं खुलकर
बर्फ़ पिघलते ही
बागों में,
द्यदरी कूकती है कि नहीं मस्ती में
फ़सल पकती है कि नहीं
उसकी आवाज़ पर;
हमें कुछ भी पता नहीं ।
इस दूरस्थ देश में

परदेश में ।

उधर से कोई हवा आती ही नहीं,

सन्देशे लाती ही नहीं ।

(11)

कहाँ से लायें हम

बर्फ़ीली पहाड़ियों की वह मोगरी मुस्कान,

कहाँ से लायें

डल झील की शतदली —

सजीली सुबह,

लजीली शाम ।

कहाँ से देखें सपने

अब हमें नींद ही नहीं आती ।

(12)

पूर्व में भी

इसी तरह टूटे थे हम,

छूटे थे चिन्तन की धरा–धारा से ।

सुदूर इतिहास के दरदराते पृष्ठों पर

झुर्रियों वाले अक्षर

इसके साक्षी हैं ।

(13)

ईसा की चौदहवीं शती से प्रारम्भ हुआ था

हमारे दुर्भाग्य का दुकाल;

ग्रस लिया था

हमारे सूरज को राहु ने,

केतु ने डँस लिया था
चाँद को ।
वादियों की फूलती–फलती ज़िन्दगी में
घुल गये थे विषाणु
घृणा के – द्वेष के,
नगरों–गाँवों में
छा गयी थी मुर्दनी
श्मशानी,
काले पड़ गये थे दृष्टियों के डोरे ;
दिन के उजाले में
कुछ भी नज़र नहीं आता था ।
सन् तेरह सौ नवासी से चौदह सौ बीस ईसवी तक का
काल बेहद काला था ।
ब्रिज–बिहारा का विशाल ग्रन्थालय
जल कर सख हो गया था
उठती रहीं थीं लपटें
आकाश में
महीनों तक बुझ न पायी थी आग ।
मार्तण्ड–मन्दिर के खण्डहरों पर
आज भी अंकित है
सिकन्दर बुतशिकन की विध्वंसक लीला,
हर उमरा हुआ टीला
कहता है आज भी
नृशंसता की कहानी ।
बर्बर तलवार ने

उतार दिया था मौत के घाट
हजारों निरीह लोगों को
सम्पूर्ण घाटी गँधिया गयी थी
रक्त की गन्ध से;
वितस्ता का पानी लाल हो गया था ।
अपने वर्चस्व को बचाये रह गये थे
सिर्फ़ ग्यारह परिवार
उन दिनों ज्यों–त्यों खड़े
लुचे–खुचे स्तम्भ–से;
बाकी सब ढ़ह गये थे
ढूह–से
पशु–बल की बाढ़ में एक साथ बह गये थे ।

(14)
सन् सत्रह सौ बावन से अठारह सौ उन्नीस तक
दुर्रानी–आतंक का शासन था,
कश्मीर की कुसुमादपि कोमल घाटी
वज्र सहती रही,
गिद्धों और बाजों के पंजों में
जकड़ गये कपोती पंख,
मार–काट चलती रही,
धर्म के नाम पर अधर्म का जुनून
सिर पर चढ़ कर बोलता रहा,
सीमाएँ टूट गयीं निर्दयता की ।
धर्म ज़िन्दगी देता है, लेता नहीं, –

यह कौन समझाता कुटिल शासकों को
कौन बताता ज़िन्दगी का मोल ?
उनकी आँखों में तो बस ख़ून था ।
नृशंस वध करना ही उनका कर्म था,
नृशंस वध करना ही उनका धर्म था ।
अपने को ही जीवित रखने की
क्रूर व्यवस्था ने
चूस लिया था रक्त
नोंच लिया था मांस
जन–जीवन का,
रह गया था केवल कंकाल
टुकुरता शून्य में ।

(15)

समय गुज़र गया
रुकता ही कहाँ है वह !
डोगरा–शासन में तसल्ली मिली किंचित्
और उसके बाद मिली आज़ादी
सन् उन्नीस सौ सैंतालीस की पन्द्रह अगस्त को
बादल छँटे धुन्ध के–धुवां के,
नयी किरण फूटी क्षितिज पर,
नया सूरज उगा,
नयी सुबह मुस्कराने लगी ।
पर हाय ! हल्ला बोल दिया कबाइली मुजाहिदों ने
रातों–रात

कब्जा कर लिया कश्मीर के एक बड़े भूभाग पर ।
हमारी बन्दूकें भरी–की–भरी रह गयीं,
चलती–चलती रुक गयीं;
कौन पूछे–क्यों ?
कारतूस तो सही थे, ट्रिगर तो ठीक थे ।
और तभी से न जाने क्यों
हवा की हरकत ही बदल गयी कश्मीर में;
दम तोड़ गये हमारे सारे मन्सूबे,
उम्मीदों पर पानी फिर गया ।
स्वतंत्र देश में हम फिर शिकार हो गये
विदेशी आतंक के
हमारे धर में ही कोई हमें मार गया;
और गंगा का पानी इसे स्वीकार ही नहीं करता ।
ठुक रहीं हैं कीलों–पर–कीलें,
पड़ रहीं हैं कुल्हाड़ियों–पर–कुल्हाड़ियाँ
रात–दिन
माँ के मस्तक पर
दरारें–ही–दरारें नज़र आती हैं ।
माँ के पुजारी
जान कर भी नहीं जानते,
मान कर भी नहीं मानते,
– यह कैसा दुराग्रह है – यह, कौनसी कमजोरी है ?
ज़रूर हमसे कोई ऐतिहासिक भूल तो हुई है !

(16)

मख़दूम साहब, दस्तग़ीर साहब,
और हज़रत्त–बल में
हमने भी चढ़ायी थीं चादरें,
सज़्दा किया था,
मिन्नतें मनायी थीं;
चरारे–शरीफ़ में शेख़ नुरुद्दीन वली की मज़ार पर
हमने भी टेका था माथा;
लेकिन हुआ क्या ?
हम 'शिव' से 'शव' हो गये
देखते–ही–देखते
उजड़ गयी हमारी हरी–भरी बस्ती;
उड़ने लगे कव्वे
मन्दिरों के गुम्बदों पर
बोलने लगे उल्लू ।
मशीनगनें गोलियों के सिवा और उगलती भी क्या ?

(17)

क्या हमारी दशा
नहीं है उन बौद्ध–भिक्षुओं जैसी,
जो भूखे–प्यासे
अपने प्रिय भोजपत्री त्रिपिटक ग्रन्थों को
पीठ पर लादे
पलायन कर गये थे
हिमालय के दुर्गम–दूरस्थ स्थानों की ओर ।
उनके एक–एक अहिंसक मस्तक पर

सौने की सौ–सौ हिंसक मुद्राएँ लगीं थीं ।
उनकी रक्षा का साहस
कौन जुटा पाया था,
प्रतिरोध की आवाज़
कौन उठा पाया था ?
कोई भी तो नहीं – कोई भी तो नहीं ।
कभी–कभी आदमी
हिंस्र पशु से भी ज्यादा खूँखार हो जाता है;
कलेजा ही नहीं,
मनुष्य की आत्मा तक को
खोद–खोद कर खा जाता है,
ख़ून के सिवा कुछ पीता ही नहीं ;
प्यार की ज़िन्दगी जीता ही नहीं ।

(18)

दिल्ली की देहरी पर
बार–बार पाँव पटकना हमें अच्छा नहीं लगता,
रोशनी के चुँधियाते गलियारों में भटकना
हमें अच्छा नहीं लगता,
मानव–अधिकारों के
खुलते–बन्द होते दरवाज़ों को देखना
हमें अच्छा नहीं लगता,
शून्य में रेखाएँ उरेखना
हमें अच्छा नहीं लगता ।
फिर क्या करें,

कहाँ जाये ?

हमारे रहनुमाओं को फ़ुरसत हीं नहीं है

मंचों से

लंचों से ।

उन्हें क्या पता

कि पत्थरों से पानी निकलता है

तो कश्मीर बनता है ।

(19)

हमें पता है –

कश्मीर की पौराणिक मिट्टी से बने

दीपकों में

अद्‌भुत जीवट है

इसीलिए तो वे बुझते नहीं, जलते हैं

झंझावातों में;

टूटते नहीं – खूटते नहीं ।

हलाहल पीती है उनकी लौ

जल–जल कर जीती है ।

(20)

हम कश्मीर को

और कश्मीर हमको कैसे भूल सकते हैं ?

हमारे तन एक ही माटी से बने हैं

हमारे मन एक ही धागे से बुने हैं ।

हम कश्मीर के

और कश्मीर हमारा पर्याय है;

कश्मीर कल भी हमारा था,
आज भी हमारा है,
और कल भी हमारा रहेगा;
दो शरीर एक प्राण
आन्तरिक धरातल पर कैसे जुदा हो सकते हैं ?
हम आज भी देखते हैं घण्टों
आँखें मूँद कर अकेले में
कश्मीर को;
उसकी एक–एक मुद्रा, एक–एक फब
हमारे मस्तिष्क के केनवास पर
उतर आती है चित्र–सी
अनेक–अनेक रंगों में–अनेक–अनेक रूपों में
बहुत–बहुत भाती है ।
सच, आज भी हमें
सपने तो कश्मीर के ही आते हैं;
जहाँ भी हम जाते हैं
गीत तो कश्मीर के ही गाते हैं ।
क्योंकि कश्मीर का हमसे
और हमारा कश्मीर से संबंध
आज का नहीं;
पुराना है
युग–युगान्तरों का —
जन्म–जन्मान्तरों का ।
हाय! हमारा मन तो अटका है आज भी
कश्मीर की घाटी में

वितस्ता के तट पर ।

"धी...रे—धी...रे बहती थी वितस्ता;

धी...रे—धी...रे चलता था वात

धी...रे—धी...रे उठती थीं लहरें;

धी...रे—धी...रे सिहरते थे गात ।"

यह सब सपनों की बात

हो गयी है अब ।

(21)

कौन आँक पायेगा पीड़ा को,

कौन देगा वाणी

हमारे मन की व्यथा को ?

हाय ! कश्मीर की घाटी को

बारूद़ी लपटों में जलते हुए देखकर

कौन कह पायेगा –

"बहिश्त अज–ब़र रोये जमीं अस्तो,

हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो ।"

"कई–कई प्रश्न चुभ जाते हैं
आँखें में एक साथ
सुलगती हुई सूँई की तरह,
पसलियों के भीतर
फैंफड़ों में बहुत पीड़ा होती है ।"

– *(मैं तो सिर्फ़ आकाश हूँ)*

अन्ततः

"असत्य के पंजों से पंजा लड़ाना ज़रूरी है,
सत्य की झोली में
चुपचाप बैठ कर
सुरक्षित महसूस करना बुझ़दिली है ।
— यह सोच मेरा अपना है,
मैं इसे तुम पर थोपना नहीं चाहता ।"

— *(पाँखुरी—पाँखुरी मन)*

अभी तेरे आँचल में दूध है, वितस्ते !

ममता के आँसू
सूखे नहीं हैं,
अभी तेरे आँचल में दूध है, वितस्ते !

समय के थपेड़ों से
टूटी नहीं है
अभी तेरी छाती में पौराणिक बल है;
धारा में गति है,
धीरज है, धृति है,
अभी तेरे तल की यह महिमा अतल है ।
तेरा यह पानी, पानी नहीं है,
तेरा यह पानी तो
घृत है, अमृत है;
तेरे, इस पानी की
अभिमानी गाथा है,
तेरे इस पानी में संकल्पी व्रत है ।

टूट जाते नाते सब
तार–तार हो जाते,
टूटते नहीं हैं माँ–बेटों के रिश्ते !
अभी तेरे आँचल में दूध है, वितस्ते !

तेरे तो अंचल के पत्थर भी भावुक हैं,

बोलते हैं,

लहरों में सन्तूरी स्वर हैं;

तेरे तो युग–युग से

बहते जल–दर्पण में

त.रों के बिम्बों के ठहरे–से घर हैं ।

मिलता है जीवन–रस

तुझसे ही घाटी को,

माटी को मिलती है सौंधी उर्वरता;

उगते हैं सपने, सच,

क्षितिजों की आँखों में,

धरती पर बढ़ जाती नभ की निर्भरता ।

कामधेनु चरती है,

हरी–भरी धरती है,

अभी तेरे तट पर उतरते हैं फरिश्ते ।

अभी तेरे आँचल में दूध है, वितस्ते !

तपती दोपहरी में

तप्त शिलाखण्डों पर

मन के उच्चाशय ने धूनी तपी है;

तंत्रों के तानों में

मंत्रों के बानों में

अब तक के अनुभव की बातें छिपी हैं ।

तू ही तो गिरिजा है,

ऊर्जा है, चिति है, सच,
तेरा ही रूप तो घाटी का रूप है;
तेरे ही पर्वत हैं,
तेरे ही तरुवर हैं,
तेरे ही खग हैं, नभ, चाँदनी है, धूप है ।

कंचन—सा तन तेरा
फूलों—सा मन है,
तपः पूत माते ! ओ, तपस्विनी ! नमस्ते ।
अमी तेरे आँचल में दूध हैं, वितस्ते !

—'—'—'—'—'—'—'

समय के पार वाला मन्दिर

ये खूँटियों से बंधे रास्ते
हमें कहीं भी नहीं ले जाते,
घुमा—फिरा कर वहीं ले आते हैं,
जहाँ से हम चले थे;
हम स्वतंत्र विचरण कर ही नहीं पाते ।

रास्तों से आगे
समय के पार वाला मन्दिर
सूना ही पड़ा रह जाता है;
वहाँ न कोई आ पाता है — न जा पाता है ।

—'—'—'—'—'—

शिव होना ही पड़ेगा

अन्धेरे से डर कर
रोशनी की तरफ़ भागने के दिन
लद गये;
अब तो चलना ही पड़ेगा
अन्धेरे में,
जलना ही पड़ेगा
दीप बन कर;
ज़लने का कष्ट भोगना ही पड़ेगा ।
अन्धेरा एक तो नहीं है
बाहरी–भीतरी अन्धेरे–ही–अन्धेरे हैं,
न जाने कितने
हमारे वजूद को घेरे हैं ।
अब तो लड़ना ही पड़ेगा
मृत्यु से,
हिम्मत जुटानी ही पड़ेगी;
पीना ही पड़ेगा विष,
शिव होना ही पड़ेगा ।

–'–'–'–'–'–

शक्ति-पूजा

शक्ति की पूजा
शक्ति का इस्तेमाल करने से होगी,
उस पर फूल चढ़ाने से नहीं,
उसका गुणगान करने से नहीं ।
पत्थर की मूर्त्ति गढ़ कर
तुम उसे निष्क्रिय मत बनाओ;
हो सके तो उठाओ
ऐ, मेरे शास्त्र के प्रणेता !
हाथों में शस्त्र
और घोंप दो उसे शत्रु के सीने में;
शत्रु कहीं और नहीं है
वह तो बैठा है अपने ही मन में
साँप की तरह कुण्डली मारे छिपकर;
भय उसका नाम है ।
'कर्म' के संकल्पित परिप्रेक्ष्य में
'शरणागति' की बात हमें अच्छी नहीं लगती,
जैसे सब–कुछ देकर
छीन लिया हो किसी ने हमको,
हमारे व्यक्तित्व को,
हमारे अस्तित्व को ।
किसी मन्दिर में
हाथ जोड़ कर नतमस्तक होना
अपने ही अन्तर्निहित
ऊर्जा की देवी का अपमान है ।

–'–'–'–

शेष-विशेष

पुस्तकों से प्रेरणा तो मिल सकती है,
ऊर्जा नहीं;
वह तो जगानी पड़ेगी अपने–आप में,
अपने हर कण में – हर परमाणु में ।
तभी तो टूटेगी जड़ता,
विच्छिन्न होगी निविड़ता
अन्धकार की,
स्नायुओं में पैदा होगी बिजली;
अंकुरित होंगे हमारे संकल्पों के पथरीले बीज
इस महाशून्य में
चमकते–दमकते उल्का–पिण्डों की तरह,
सूरज, चाँद, सितारों की तरह;
तभी तो फलित होगा प्रकृति का मकसद ।

–'–"–'–'–'–

परिशेष : एक

(कविता में प्रयुक्त कश्मीरी शब्दों, पदावलियों तथा वाक्यों के अर्थ, व्याख्या एवं सन्दर्भ)

अ

अंज़ : हंस की प्रजाति का एक पक्षी । यह जल में या जलाशय के किनारे रहता है । इसे माता–पिता अपनी विवाहित बेटियों को ससुराल–गमन पर उपहार में देते हैं ।

अटहोर : डेजिहोर आमूषण ने नीचे लटकने वाले फुँदने । इसमें 'अट' का अर्थ जंजीर या डोरी है । ये स्त्रियों का सुहाग–चिह्न हैं ।

अतंगत : विवाहित बेटी को मायके से ससुराल भेजते समय दी जाने वाली धन–राशि आदि । यह शब्द संस्कृत भाषा के 'अत्र गच्छति' से बना है ।

अथवास : कश्मीरी में 'अथ' का अर्थ है हाथ तथा वास का तात्पर्य है हाथ में हाथ का वास सदा के लिए । विवाह के अवसर पर शप्तपदी के बाद वर–वधू पूर्व दिशा की ओर मुँह करके एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बैठते हैं । इसमें दायें से दायां और बायें से बायां हाथ पकड़ते हैं । कश्मीर में पाणिग्रहण की पुष्टि में यह अनुष्ठान अलग से किया जाता है । इसमें वर–वधू के हाथों को कपड़े से ढँक देते हैं ।

आऽलिचि : एक फल का नाम ।

इ

इरा : एक पुष्प का नाम । कश्मीरी लोग इसे विरिक्योम व ईरापोश भी कहते हैं । कश्मीर में यह पुष्प प्राचीन काल से शुभ कार्यों में प्रयुक्त किया जाता रहा

है । इसके संबंध में पौराणिक उल्लेख यह है कि इन्द्र के अभिशाप के कारण इरा नामक अप्सरा पुष्प के रूप में बदल गयी । इस पुष्प की मान्यता का कारण नाग–परम्परा भी है । वस्तुतः इरा नागों को बहुत प्रिय रही है । नीलमत पुराण के अनुसार नागराज नील उस व्यक्ति से प्रसन्न होता है जो उसकी पूजा इरा से करता है –

'इरा नागेषु दायिता, दयिता मे विशेषतः ।'

क

कलपुश : पश्मीने की बनी एक गर्म टोपी । इसका ऊपर के सिरे का आधा भाग ज़री से बना होता है ।

कश्यप : प्रागैतिहास–काल का ऋषि । पौराणिक उल्लेख के अनुसार "जलोद्भव" राक्षस का पराभव करके इसने कश्मीर प्रदेश का निर्माण किया था । यह भृगु आदि दस महर्षियों के तेरह पुत्रों या शिष्यों में से एक था; और इसलिए ऋषि वर्ग में उनके साथ इसकी भी गणना होती है । इसने तप और अपने ज्ञान के बल पर ऋषि पद प्राप्त किया था ।

कांगड़ी : काष्ट–अंगारिका का अपभ्रंश । कठोर–सर्दियों में इसे फिरन के नीचे हाथों में पकड़ा जाता है; बैठने पर इसे पांवों में दबाया जाता है । सोते समय इसे बिस्तरों में पेट या पांब के पास रखते हैं । कश्मीर में माघ के महीने में शीत बहुत बढ़ जाने से इसका महत्त्व भी बढ़ जाता है ।

'काव यिन्य बोल, मरा दयोन मोल' : कौवों पर विरचित लोक-गीत के बोल । काग–पूर्णिमा पर कौवों को भोजन खिलाया जाता है । इसी समय लोग इस गीत को बोलते हैं । इस बोल का अर्थ है –"देखो कौवों की बारात है; मुराद का पिता उसमें है ।" कश्मीरी में मोल का मतलब पिता तथा 'यिन्य बोल' का अर्थ बारात है । भारत के अन्य प्रदेशों में भी श्राध के दिनों में कौवों को खीर खिलायी जाती है ।

कुबेर : धन और उत्तर दिशा का स्वामी । इसके अतिरिक्त यह यक्षों व किन्नरों का राजा तथा रूद्र का मित्र भी है । पुराणों में इसे विकृत अंगों वाला बताया गया है ।

कोंग : केसर का कश्मीरी नाम । पाम्पोर के क्षेत्र में इसकी खेती होती है । शरद ऋतु में कार्तिक पूर्णिमा पर यह अपने रंग, प्रफुल्लता तथा सुगन्धि के कारण विशेष आकर्षण का केन्द्र बन जाती है ।

कोंगस मज़ रोंग फ़ोल : एक कश्मीरी कहावत । इसका अर्थ है 'केसर में लोंग का लगना' अर्थात् विवाह आदि अवसरों पर अपने आचरण से बेमेल लगने वाला छैला व्यक्ति । स्त्रियाँ विनोद स्वरूप ऐसे व्यक्ति को यह उपाधि देती हैं ।

कौशुर : नीलमत पुराण के अनुसार अनन्तावतार बलराम ने देवी–देवताओं के अनुनय पर हल चलाकर पत्थरों से जल निकाला था, इसलिए 'क' (जल) 'अश्म' (पत्थर) और 'ईर' (निकालना) के सहयोग से कश्मीर नाम पड़ा' । कश्मीरी भाषा में इसे 'कौशुर' कहते हैं ।

कौसुम : कुसम्भ का फूल । इसका उपयोग पूजा तथा कपड़े रंगने के कामों में किया जाता था ।

ख

खिची–मावस : कुबेर अमावस्या । इस त्यौहार पर कश्मीर में खिचड़ी बनायी जाती है तथा बर्तन, आभूषण आदि चीजें खरीद कर घर में लायी जाती हैं । भारत के अन्य प्रदेशों में दीपावली से पूर्व धन–तेरस से मिलता–जुलता ही यह त्यौहार है ।

ग

गाड–काह : शिव रात्रि से पूर्व की एकादशी । इस दिन मछली पकाते हैं ।

गाडबत : मछली भात का भोजन ।

च

चक्रेश्वरी : हारी–पर्वत पर स्थित 'श्री चक्र' की अधिष्ठात्री महाशक्ति त्रिपुर सुन्दरी देवी । इसे शारिका भी कहा जाता है ।

चेSर : एक फल । इसे खुबानी भी कहा जाता है । यह अंग्रेजी भाषा का शब्द है ।

छ

छकरी : एक कश्मीरी संगीतात्मक लोक–गीत । इसकी धुन में स्त्रियों का मनोराग प्रकट होता है ।

ज

जंग–त्रय : नव दुर्गा तृतीया पर मनाये जाने वाला स्त्रियों का त्यौहार ।

ज़रबाफ : ज़री वाले रेशमी कपड़े का बनाया गया तिकोन । यह नयी दुल्हन के सिर पर या कन्धे पर जड़ दिया जाता है । यह नज़र न लगने के निमित्त एक टोटके की भांति है । उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान आदि प्रदेशों में इस हेतु ठोड़ी अथवा गाल पर काज़ल का काला तिलक या टीका लगाया जाता है ।

जूज : तरंग के ऊपर बँधा हुआ वस्त्र । यह जाली तथा सुनहरे धागों से दोनों किनारों पर बुनी होती है । इसे सप्त मातृकाओं का प्रतीक माना जाता है ।

ज्येष्ठा / ज़िष्टा : 'श्री चक्र' के त्रिकोण में दूसरी रेखा की अधिष्ठात्री देवी । यह सर्व मंगलकारिणी है तथा इसे ज्ञान अथवा मध्यमा शक्ति भी कहा जाता है ।

ज्वाला : अग्नि की देवी ज्वाला भगवती । श्रीनगर के पास खिव नामक स्थान पर भूमि से ज्वाला निकला करती थी जिसे हिन्दू लोग ज्वाला देवी समझ कर पूजा करते थे । आषाढ़ चतुर्दशी को यहाँ मेला लगता है ।

ट

टेकअ–बटनी : चैत्र माह में खिलने वाला एक आकर्षक पुष्प । इसकी उपमा कश्मीरी भट्ट पंडित की स्त्री से दी जाती है । इसमें 'बटनी' भट्टिनी से बना है ।

ट्योक : पुरूषों के ललाट पर लगाये जाने वाला तिलक । यह चन्दन, हल्दी अथवा कुंकुम से लगाया जाता है और विशेष शुभ अवसरों पर इसके साथ अक्षत भी लगाये जाते हैं जो सम्मान, सत्कार तथा स्वागत का प्रतीक है ।

डून्य्–मावस : शिवरात्रि की पाँच दिनों की पूजा का अन्तिम दिन । शिवरात्रि पर घड़ों में अखरोट भिगोये जाते हैं । इन अखरोटों से भरे घड़ों की इस दिन पूजा की जाती है और इसी दिन अखरोट खाये जाते हैं । कश्मीरी भाषा में अखरोटों को डून्य् कहते हैं; मावस 'अमावस्या' का अप–भ्रंश है ।

डेजिहोर : सोने का बना षट्कोणीय या सिंघाड़े के आकार का आभूषण । इसे स्त्रियाँ कानों में पहनती हैं, यह डोरी के नीचे होता है । इसे सुहाग का चिह्न समझा जाता है और विवाह पर कन्या के पिता द्वारा दिया जाता है ।

त

तरंग : कश्मीरी स्त्रियों के सिर ढाँकने का एक पारम्परिक आवरण । इसमें साढ़े तीन लपेटे होते हैं तथा इसे कुण्डलिनी शक्ति का प्रतीक माना जाता है । जब कन्या का विवाह होता है तब उसके सिर पर यह बाँधा जाता है ।

तालरज : सोने या रेशम की लटकन ।

तील–अठम : शिवरात्रि के बाद की तेल अष्ठमी । इस दिन शिवरात्रि पर्वों का समापन हो जाता है ।

तुम्बक–नारी : एक ढ़ोलकनुमा वाद्य । यह आँव में पके हुए सुराई जैसे बर्तन के मुँह को चमड़े से मढ़ँ कर बनाया जाता है । इसकी एक ताल में भजन आदि गीत गाये जाते हैं ।

तुलमुल : श्रीनगर से 30 किलोमीटर दूर एक गाँव । पौराणिक मान्यता के अनुसार तरु (शहतूत) के मूल से देवी प्रकट हुई थी इसलिए इस ग्राम का नाम तुलमुल पड़ा । इस ग्राम के पास ही क्षीर भवानी का चश्मा तथा मंदिर है ।

द

दस्तगीर सांहब : श्रीनगर की एक दरगाह । इसे बहुत पवित्र मानते हैं तथा मुस्लिम लोग इसकी कसम खाते हैं । दस्तगीर का शाब्दिक अर्थ है हाथ पकड़ कर मदद करने वाला ।

दिवगोन : देव–पूजन ।

देवदारू : हिमालय के पर्वत की श्रेणियों पर उगने वाले ऊँचे–ऊँचे वृक्ष । इन्हीं की श्रेणी में बुदलू और कायरू आते हैं ।

दयदरी : कश्मीर में 7–8 हजार फीट की ऊँचाई पर पाये जाने वाला पक्षी । इसका अंग्रेजी नाम ट्री–कीपर है तथा लेटिन में इसे 'हिमालयाना' कहा जाता है । इसके बोलने को शुभ शकुन के रूप में लिया जाता है । यह माना जाता है कि इसके कूकने से फ़सल पकती है ।

दयार–दहम : शिवरात्रि के पूर्व की दसमी । इस दिन रुपये–पैसे का हिसाब होता है । 'दयार' शब्द दीनार का अपभ्रंश प्रतीत होता है ।

ध

धतूरा : श्रावण में कूड़े के ढ़ेर पर खिलने वाला एक फूल । इसमें जहरीले नशे के तीक्ष्ण तत्त्व होते हैं । कहते हैं कि यह शिव को बहुत पसंद है इसलिए इसे उस पर चढ़ाया जाता है ।

धम्म–वाणी : भगवान गौतम बुद्ध के पाली भाषा में दिये गये उपदेश ।

न

नरवारि : स्त्रियों के फिरन की आस्तीन पर लाल रंग के कपड़े की पट्टी । यह सुहाग की निशानी मानी जाती है ।

नवरेह : नव वर्ष की शुभ कामना का सूचक पहली नव रात्रि का दिन । इस दिन के लिए काम में ली जाने वाली चीजों में 'चावल' तथा 'डलिया' खेती और पुष्कल उपज के, 'परात' भर–भर कर खाने की, 'पंचांग' नक्षत्रों की अनुकूलता की प्रतीक है व 'कलम–दवात' शिक्षा एवं विद्या की, 'चाँदी का सिक्का' धन का, 'भात' पक्वान्न का, 'दही' गोरस का द्योतक है । इसी प्रकार 'फूल' सौन्दर्य का, 'भगवती का चित्र' देवी कृपा की, 'अखरोट' आदि फल मेवा की, 'वाय' औषधि तथा स्वास्थ्य की तथा 'नमक' दुर्लभ वस्तु की सुलभता की ओर संकेत करता है । घर की पवित्रता तथा स्नेह की प्रतीक 'कुमारी कन्या' इन सब वस्तुओं का वर्ष के इस प्रथम दिन परिवार के लोगों को दर्शन करा कर आगामी नव वर्ष में सम्पूर्ण सुख–समृद्धि एवं क्षेम की कामना करती है ।

नवशीन–मुबारक : कश्मीर घाटी में प्रथम नव हिमपात पर परस्पर दी जाने वाली बधाई । यह परम्परा हैं कि बच्चे या छोटे बड़े–बूढ़ों पर नवशीन चढ़ा देते हैं अर्थात् पुड़िया आदि में छिपा कर नयी बर्फ़ उन्हें देते हैं और अगर बड़ों ने उसे स्वीकार कर लिया तो उन्हें इनाम देना पड़ता है ।

नाग : एक जाति विशेष । इसका मूल स्थान कश्मीर माना जाता है, तक्षक नाग यहीं का निवासी था । उत्तर–पश्चिम भारत में नागों का वर्चस्व था । कृष्ण द्वारा कालिया नाग का दमन, परीक्षित का नागों द्वारा छल से मारा जाना तथा जनमेजय द्वारा नागों का सर्वनाश किये जाने की घटनाएँ प्राचीन साहित्य में मिलती हैं । एक कश्मीरी ब्राह्मण द्वारा तक्षक आदि नागों की रक्षा करने का भी उल्लेख महाभारत में मिलता है । वर्तमान नागालैण्ड में इस जाति के लोग हैं। 'नाग' शब्द का अर्थ कश्मीरी में जल-स्त्रोत या जल धारा भी है तथा 'नाग' का अर्थ सर्प भी है ।

नील : इस नाम का प्राचीन नागराज । इसकी पूजा इरा–कुसुम से किये जाने की परम्परा थी ।

नीलमत : नील नाग द्वारा विरचित पुराण । इस ग्रन्थ में मिथकीय सांस्कृतिक इतिहास की प्रचुर सामग्री है । इसमें बुद्ध की पूजा का वर्णन है जिससे यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म के कश्मीर में प्रवेश के बाद ही यह ग्रन्थ लिखा गया था ।

नून : कश्मीर में यह दुर्लभ वस्तु रही है । इसके दहेज तथा कन्या की विदाई के समय उसे उपहार में दिये जाने की प्रथा है । यह कश्मीर में उसी तरह मांगलिक एवं शुभा माना जाता है जिस तरह राजस्थान तथा उत्तर भारत के अन्य प्रदेशों में गुड़ ।

प

पदिमनी : सर्वोत्तम लक्षणों से सम्पन्न स्त्री । काम–शास्त्र में चार प्रकार की स्त्रियाँ मानी गई हैं; यथा- पदि्मनी, चित्रणी, शंखनी तथा हस्तिनी । इनमें सौन्दर्य-शालिनी पदि्मनी सर्वश्रेष्ठ है । इसके लक्षण निम्न श्लोक में बताये गये हैं :–"भवति कमलनेत्रा, नासिकाक्षुद्ररन्ध्रा,

अविरल कुचयुग्मा, दीर्घकेशी, कृशांगी;
मृदुवचन सुशीला, नृत्यगीतानुरक्ता,
सकल तनुसुवेशा, पदि्मनी पदम्–गंधा ।।"

पनदाव : गले में पहनने का सूत्र। यह पाणिग्रहण संस्कार के बाद स्त्रियों द्वारा दुल्हन को पहनाया जाता है ।

पनदयून : श्रावण मास में भगवान विष्णु के लिए बनाये गये रोठ का भोग दूर्वा एवं कपास के तन्तुओं से विष्णु की पूजा की जाती है ।

पाम्पोर : कश्मीर के एक कस्बे का नाम । इस क्षेत्र में केसर की खेती होती है । यह स्थान कश्मीर की शैव योगिनी संत कवयित्री लल्लेश्वरी की कर्म भूमि रहा है । 'पम्पोर' शब्द संस्कृत के 'पद्मपुर' का अपभ्रंश है ।

पम्पोश : कमल । नदी, झील, तालाबों में हेमन्त तथा शिशिर को छोड़ शेष सभी ऋतुओं में इसके फूल खिलते हैं किन्तु कश्मीर में आषाढ़ के माह में

इसकी शोभा निराली होती है । पौराणिक कथा के मुताबिक इसमें लक्ष्मी का वास होता है और इसकी उत्पत्ति विष्णु की नाभि से होना बताया गया है । विष्णु–पत्नी लक्ष्मी को कमला भी कहा जाता है । संस्कृत में लक्ष्मी को कमला भी कहा जाता है । संस्कृत के वनौषधि–दर्पण में इसके सात प्रकार के होने का उल्लेख किया गया है; यथा – पुण्डरीक (अत्यंत श्वेत), सौगंधिक (नीलोत्पल), कोकनद (रक्त पद्म) कुमुद तथा तीन प्रकार के क्षुद्र उत्पल ।

पुलहोर : मूँज से बुनकर बनाया गया जूता । इसे पहन कर बर्फ़ पर चला जाता है। इससे पाँव नहीं फिसलते ।

पूच : जूज़ के ऊपर लगी मलमल की डोरियाँ । ये पाँव तक लटकी रहती हैं और नीचे से दो भागों में बँटी होती है ।

पोशनूल : पक्षी । यह बर्फ़ पिघलने पर बसन्त में प्रकट होता है ।

ब

'बहिश्त अजबर रोये जमीं अस्तो;
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो ।' : अर्थात् , यदि कहीं जमीन पर स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं हैं।

ब्रिज–बिहारा : अनन्तनाग के पास एक ग्राम । यहाँ उन दिनों प्रसिद्ध संस्कृत विश्वविद्यालय था जिसके ग्रन्थालय में एक लाख के लगभग पाण्डुलिपियाँ थीं । सिकन्दर बुतशिकन ने उसे जला कर भस्म कर दिया था ।

ब्यल : बेल–पत्र; इसके फलों–पत्तों से शिवरात्रि को शिव की पूजा की जाती है ।

म

मख़दूम साहब : श्रीनगर में स्थित मुसलमानों की ज़ियारत–स्थली । मख़दूम साहब सूफ़ी इस्लाम के प्रचारक थे ।

महादेव–पर्वत : श्रीनगर में स्थित एक पर्वत । इसी पर्वत की शिला पर अदृश्य शिव–सूत्रों का उदगम हुआ बताते हैं ।

य

यारबल : नदी का तट । वितस्ता के तट पर बने स्नान–घाट जहाँ धार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं । बौद्ध–काल में यहाँ बौद्ध विहार हुआ करते थे ।

र

रबाब : कश्मीर के तीन प्रचलित प्रमुख वाद्यों में से एक । अन्य दो हैं तुम्बकनारी तथा सन्तूर । यह वाद्य ईरान से कश्मीर में आया ।

राजतरंगिणी : कल्हण द्वारा विरचित कश्मीर का काव्यात्मक राजनैतिक इतिहास ।

रामगोड़ : मिट्टी का (पीतल का भी) बना पात्र । इसे कश्मीर में भैरव का प्रतीक माना जाता है ।

रिशिड्डूलिज : मिट्टी अथवा पीतल से निर्मित बरतन । इसे शनि का द्योतक समझा जाता है ।

रूप भवानी : कश्मीर की तपस्विनी योग–साधिका । ये अलख साहिबा या अलखेश्वरी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं । विक्रम संवत् 1677 में ज्येष्ठ पूर्णमासी को श्री माधव पंडित धर के घर में इनका जन्म हुआ था । ये श्री जगदम्बा शारिका का अवतार मानी जाती हैं ।

रोंग : लवंग की आकृति का नाक में पहने जाने वाला आभूषण ।

रोफ़ : कश्मीरी मुस्लिम स्त्रियों का वृत्याकार गीत सहित नृत्य । इसमें एक–एक पग आगे–पीछे किया जाता है । रोफ़ अथवा रूफ़ में अनेक प्रकार के प्रणय–गीत–विरह–गाथाएँ (यूसुफ–जुलेखा, लेला–मजनू, शीरी–फरहाद) तथा लोक-गीत गाये जाते हैं । इनमें नृत्य तो नाम–मात्र का ही होता है; वास्तव में यह समूह–गान ही हैं और प्रायः ईद के दिन गाये जाते हैं ।

ल

ललदयद : कश्मीर की प्रथम स्त्री शिवयोगिनी संत कवयित्री लल्लेश्वरी । 'दयद' का अर्थ है दादी ।

लूंगि : स्त्रियों का कमर पर बाँधा जाने वाला वस्त्र ।

वटुक : मिट्टी या पीतल से निर्मित एक पात्र, घड़ा । इसे शिव का प्रतीक माना जाता है ।

वनवुन : कश्मीर के संस्कार गीत । पुत्र–जन्म, मुण्डन, रात्रि जागरण, देव–पूजन, विवाह, लग्न, मण्डप आदि के अवसरों पर इन गीतों को गाया जाता है ।

वय : झील में उगने वाली वनस्पति । इसकी बेल को छील कर खाया जाता है तथा इसकी गाँठ औषधि के काम आती है ।

वार्गुर्य–बाह : शिवरात्रि से पूर्व वागुर द्वादशी । इस दिन बड़े घड़े में अखरोट भिगोये जाते हैं जिसे 'वटुक भरना' या वागुर कहते हैं । बड़े घड़े में से छोटे–छोटे कुल्हड़नुमा अन्य पात्रों में भीगे हुए अखरोट तथा अन्य पूजा सामग्री को बाँटा जाता है । अतः इन छोटे–छोटे पात्रों को भी वागुर कहते हैं । जो दो घड़े बड़े भरे जाते हैं वे शिव एवं शक्ति के प्रतीक होते हैं तथा जो छोटे पात्र भरे जाते हैं वे शिव–गणों के द्योतक समझे जाते हैं । इस प्रकार द्वादशी को भिगोये अखरोट दो–तीन दिन में भीतर तक गीले हो जाते हैं । प्रतिपदा के दिन इन भीगे अखरोटों का प्रसाद सारे संबंधियों को, विशेषकर बेटियों की ससुराल, भेजा जाता है । कश्मीर में सूखे अखरोट खाने से गुर्दे आदि की बीमारी होने का भय रहता है, वह भीगे अखरोट खाने से नहीं होता ।

'वाह–वाह निशात सोन' : निशात बाग पर बना एक लोक–गीत । इसके इन बोलों का अर्थ है – 'वाह–वाह ! हमारा निशात बाग ।' इसमें उसकी सुन्दरता की दाद दी गई है ।

वितस्ता : कश्मीर की जेहलम नदी । श्रीनगर इस नदी के दोनों ओर बसा है । वितस्ता इसका प्राचीन नाम है । जिस प्रकार शेष भारत में गंगा की मान्यता है उसी प्रकार कश्मीर में वितस्ता की मान्यता है। कश्मीर में वितस्ता का 'व्यथ' हो गया है । प्रचीनकाल में भाद्रपद की शुक्ल त्रयोदशी

को वितस्तोत्सव मनाया जाता था जो छह–सात दिन तक चलता था । नीलमत पुराण के अनुसार यह वितस्ता का जन्म–दिन था । कश्मीरी हिन्दू इसे उमा तथा स्वयं कश्मीर–स्वरूपा मानते हैं तथा प्राचीनकाल में इसकी पूजा की जाती थी ।

विरकिम :– चैत्र के महिने में बसन्त आगमन पर खिलने वाला पुष्प । यह पीले रंग का होता है ।

श

शारिका :– 'श्री–चक्र' की अधिष्ठात्री कश्मीर की सर्वमान्य लोकप्रिय देवी । इसको त्रिपुर–सुन्दरी, पराशक्ति, चक्रेश्वरी, महाराजन्या, जगदम्बा आदि नामों से भी पुकारा जाता है । इसी मूल आद्या विमर्श–शक्ति से शिव विश्व का विस्फार करता है । पुराण–कथा के अनुसार कश्मीर घाटी में जलोद्–भव राक्षस के नाश के लिए इसी ने शारिका का रूप धारण किया था । शारिका का शाब्दिक अर्थ मैना है जो पक्षी का नाम है ।

शिवरात्रि :– कश्मीर का मुख्य त्यौहार । यह शिवरात्रि के पूर्व की प्रतिपदा से शुरु होकर शिवरात्रि के बाद की अष्टमी तक अर्थात् 23 दिन तक चलता है । इस बीच विभिन्न उत्सव–समारोहों का आयोजन होता है ।

शिशुर–लागुन :– भूत–प्रेत अथवा कड़ी नज़र से दुल्हन को बचाने की गर्ज़ से कश्मीरी समाज में प्रचलित एक टोटकानुमा प्रथा । इसमें दुल्हन के सिर या कन्धे पर ज़रबाफ़ जड़ दिया जाता है ।

श्री–चक्र :– हारी–पर्वत पर शिव और शक्ति का रेखात्मक तंत्र–चक्र । इसमें नौ चक्र हैं जिनका उद्‌भव बीज रूप में बिन्दु से हुआ जो इन नौ चक्रों में विशिष्ठ स्थान रखता है तथा साक्षात् शक्तिमय ही है क्यों कि शिव शक्ति का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है ।

स

सतरत :– विवाहोपरान्त प्रथम बार वर के साथ वधू का अपने पीहर आने पर

उनके आदर–सत्कार में दिया जाने वाला रात्रि भोज । इस अवसर पर अधिकांशतः सामिष भोजन परोसा जाता है ।

सनिवारी :– मिट्टी का या पीतल का बना बर्तन । इसे शिवरात्रि के इष्ट देव का प्रतीक माना जाता है ।

सन्तूर :– कश्मीर में प्रचलित मुख्य वाद्यों में से एक वाद्य । इसका विकास मूलतः जम्मू में हुआ था । इसका प्रयोग सूफ़ियाना संगीत में विशेष रूप से होता है ।

सलाम :– शिव चतुर्दर्शी का अभिवादन का दिन । इस अवसर पर कर्मकार जाति के लोग, यथा फूलवाले, धोबी, नाई, तेली, कुम्हार आदि प्रातः आकर सलाम करते हैं तथा नेग स्वरूप भेंट ले जाते हैं । इस दिन मांस के विभिंन्न व्यंजन बनाये जाते हैं तथा पीले चावल पकाये जाते हैं ।

सिकन्दर बुतशिकन :– सुल्तान शम्शुद्दीन के वंश का एक निर्दयी बादशाह । यह 1389 ई॰ में गद्दी पर बैठा था । इसने असंख्य मन्दिरों एवं मूर्तियों को तोड़ा था । इसलिए उसके नाम के साथ बुतशिकन विशेषण जुड़ गया और वह इसी नाम से ज्ञात हुआ । ब्रिज–बिहारा का विशाल ग्रंथालय तथा मार्तण्ड–सूर्य मन्दिर को इसी ने नष्ट किया था ।

ह

हजरत–बल : श्रीनगर स्थित मुसलमानों की पवित्रतम दरगाह । इसमें हज़रत मुहम्मद साहब का कथित बाल काँच की नलिका में सुरक्षित रखा हुआ है ।

हब्बा–क़दल : श्रीनगर में वितस्ता पर कश्मीरी मुस्लिम कवयित्री हब्बा ख़ातून के नाम से बना हुआ पुल । वितस्ता नदी के दोनों ओर श्रीनगर बसा है जिस पर सात पुल हैं । इन सात पुलों में से हब्बा क़दल दूसरा है । क़दल का अर्थ है पुल ।

हार–नवम : कौड़ियों वाली नवमी । विवाहिता स्त्रियों को अपने मैके में बुला लिये जाने तथा कुछ दिन रखकर उन्हें वापस इस हार नवमी को सुसराल

भेज दिये जाने की प्रथा कश्मीर में है । इस अवसर पर मैके वालों से विवाहित बेटियाँ खड़ाऊ, काँगड़ी, नमक, तन्दूरी रोटियाँ और अतगत तथा कौड़ियाँ लेकर आती हैं तथा कौड़ियों से खेलती हैं । कश्मीरी में हार को कौड़ी कहते हैं । इसलिए यह नाम पड़ा ।

हार–वन : श्रीनगर के पास वह स्थल जहाँ प्राचीन हिन्दू सभ्यता के अवशेष उत्खनन किये गये हैं । इसी स्थल पर सम्राट कनिष्क ने बौद्ध संगीति का आयोजन किया था ।

हारिन–गिन्दुन : कौड़ियों का खेल ।

हांजी : नावों से सामान ढ़ोकर लाने–ले जाने का काम करने वाले लोग । नाविक और हांजी में थोड़ा अन्तर है । हांजी खरीदने–बेचने का काम भी करते हैं और हाउस बोटों (नौका–निवास) में ही रहते हैं ।

हीमाल–नागराय : कश्मीर का पौराणिक प्रेमी–युगल । हीमाल संस्कृत शब्द 'श्रीमाल' से बना है । इस नाम की आर्य–कन्या के नाग जाति के नागराय से प्रेम की यह गाथा कश्मीर की प्राचीनतम लोक–गाथा मानी जाती है ।

हुरि–अठम : हुरा भगवती से संबंधित शिवरात्रि से पूर्व की अष्ठमी । इस दिन चक्रेश्वरी शारिका की पूजा की जाती है । 'हुरा' शब्द शारिका का अपभ्रंश है । हारी (शारिका) पर्वत पर शारिका के मन्दिर में रात–भर भजन कीर्तन होता है ।

हैरच–त्रुवाह : शिव त्रयोदशी । इस दिन मध्य रात्रि से प्रांतः तक शिव की पूजा की जाती है । घर का जो सबसे बड़ा व्यक्ति होता हैं, वह इस दिन व्रत रखता है और वही पूजा का यजमान होता है ।

क्ष

क्षीर भवानी : तुलमुल ग्राम के पास कश्मीरी हिन्दुओं का सर्वाधिक प्रसिद्ध वैष्णव प्रभाव से युक्त मंदिर । इसमें देवी की मूर्ति एक कुण्ड के मध्य में स्थित है जिसमें दूध एवं कन्द (शर्करा) अर्पित किये जाते हैं ।

त्रिपुर–सुन्दरी : महाशक्ति आद्यचेतना । इसे सारे ब्रह्माण्ड में पराविद्या के रूप में व्याप्त माना जाता है । नव चक्रात्मक 'श्री–चक्र' के मध्य में विराजित बिन्दु ही पराशक्ति है । यही बिन्दु जब विकास या स्फूर्ति में आता है तो त्रिकोण रूप में परिणित हो जाता है जो क्रमशः इच्छा–ज्ञान–क्रिया–स्वरूपिणी वामा, ज्येष्ठा रौद्री देवियों के अधिष्ठान हैं ।

त्रेल : कश्मीर में पैदा होने वाला एक फल विशेष ।

–'–'–'–'–'–

परिशेष : दो

(कविता में प्रयुक्त संस्कृत कवि-आचार्य)

अ

अभिनव गुप्त : 'तन्त्रालोक' का रचयिता शैवाचार्य ।

अश्वघोष : बौद्ध आचार्य । इसने गौतम बुद्ध के जीवन, धर्म तथा दर्शन के आधार पर प्रसिद्ध 'बुद्ध–चरितम्' नामक महाकाव्य की रचना की ।

आ

आनन्द वर्द्धन : 'ध्वन्यालोक' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का लेखक ।

क

कल्हण : राजतरंगिणी नामक ग्रन्थ का रचयिता कवि–इतिहासकार । यह कश्मीर के राजा जयसिंह का समकालीन था जिसने सन् 1129 ई॰ से 1150 ई॰ तक राज्य किया था ।

कालिदास : संस्कृत का महान् कवि–नाटककार । इसने अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, माल्विकाग्नि मित्र, रघुवंश, कुमार सम्भव, मेघदूत तथा ऋतुसंहार जैसे ग्रन्थों की रचना की। इसका समय छठी शताब्दी के मध्य माना जाता है और यह प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग के समकालीन बताया जाता है ।

ब

बाण : हर्ष चरित, कादम्बरी तथा चंडिकाशतक जैसे विख्यात ग्रन्थों के प्रणेता। बाण का समय छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच में रहा है।

बिल्हन : ग्यारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रसिद्ध कश्मीरी कवि जिसने विक्रमांक देव चरित् महाकाव्य तथा चौरपंचाशिका की रचना की।

म

मम्मट : 'काव्य–प्रकाश' का रचयिता आचार्य। यह 1294 ई. से पूर्व हुआ था।

व

वसुगुप्त : शिवसूत्रों का दृष्टा शैवाचार्य।

क्ष

क्षेमेन्द्र : कश्मीर का एक प्रसिद्ध कवि। 'समय मातृका' तथा कई अन्य ग्रन्थों का रचयिता। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का है।

:: इति ::

लेखक परिचय:

नामः धम्मप्रिय बी.एस. सहवाल

जन्मः 2 फरवरी, 1937

प्रकाशनः "यन्त्रणा अभी शेष है" "घूमती पगडंडियाँ", "मंगल परिणयन",

"पाँखुरी पाँखुरी मन" तथा "मैं तो सिर्फ आकाश हूँ -कविता संग्रह

मध्यमा-प्रतिपदा-द्विमासिक पत्रिका

शोधः 'भारतीय चिन्तन की श्रमण परम्परा', 'भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्थाः

एक पुनर्विचार तथा कश्मीर शैव दर्शन एवं शक्ति वाद-बौद्ध परम्परा के

परिपेक्ष्य में लघु शोध-प्रबन्ध।

सम्प्रतिः राजस्थान प्रशासनिक सेवा से अवकाश प्राप्त होकर समाज सेवा के

क्षेत्र में कार्यरत।

सर्म्पकः 43/2117, सम्मादिट्ठि धोला भाटा(निराला नगर)कॉलोनी,

अजमेर-305008

दूरभाषः (0145)660739

धम्मप्रिय बी.एस. सहवाल
लेखक